भगवान् महावीर की पच्चीसीवीं निर्वाण शताब्दी समारोह के

उपलक्ष में

भगवान महावीर

की

एक हज़ार आठ सूक्तियां

सम्पादक

राजस्थान केसरी प्रसिद्धवक्ता परमश्रद्धेय श्री पुष्कर
मुनि जी म. सा. के सुशिष्य समर्थ साहित्यकार
श्री देवेन्द्र मुनिजी, शास्त्री
के सुशिष्य
राजेन्द्रमुनि, शास्त्री, काव्यतीर्थ

प्रकाशक
श्री तारकगुरु जैन ग्रंथालय
पदराडा, (उदयपुर) (राजस्थान)

पुस्तक ● भगवान महावीर की सूक्तियाँ
विषय ● भगवान महावीर की १००८ सूक्तियां
सम्पादक ● राजेन्द्रमुनि शास्त्री काव्यतीर्थ
संप्रेरिका ● परमादरणीया मातेश्वरी महासती
श्री प्रकाशवतीजी
प्रकाशक ● श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय
पदराडा जि. उदयपुर (राज.)
प्रथम संस्करण ● दिसम्बर १९७३
प्रतियां ● १३००
मुद्रक ● प्रतापसिंह लूणिया
जॉब प्रिंटिंग प्रेस,
ब्रह्मपुरी, अजमेर

मूल्य : तीन रुपया

समर्पण

जिनका जीवन त्याग और वैराग्य का
साहित्य और सस्कृति का
ज्ञान और विज्ञान का
पावन संगम है, उन्ही
अनन्त-अनन्त श्रद्धा के केन्द्र
श्रद्धेय सद्गुरुवर्य राजस्थान केसरी
प्रसिद्ध वक्ता श्री पुष्कर मुनिजी म. के
कर कमलों में

-राजेन्द्र मुनि

सम्पादक की कलम से

सूक्तियां स्वयमेव साहित्याकाश के लिए उज्ज्वल नक्षत्र के समान हैं। इनकी निर्मल आभा, देशकाल की सङ्कीर्ण सीमा को लांघ कर एक रस रहती है।

जीवन के विविध अनुभवों ने इनको अजरता और अमरता दे रखी है। इन सूक्तियों में मिश्री का माधुर्य और अंगूर का सारस्य जैसा स्वाद परिलक्षित होता है।

भगवान महावीर युग-पुरुष के रूप में प्रतिष्ठित थे। उनके समय-समय के प्रवचन अतिमर्मस्पृक् होते थे। उनके आगम-साहित्य के अनेक प्रवचन-रत्न है। जिनकी झलक सहृदय एवं धार्मिक पुरुष के हृदयादर्श पर द्विगुणित प्रभासम्पन्न हो जाती है।

अतएव उन प्रवचन-रत्नो के चकाचौंध में सूक्तियों का सङ्कलन प्रारम्भ हुआ और जैसा जमा, जमाता चला गया। यहाँ वह दूसरे रूप में एक संग्रह हो गया। संग्रह के जीवनदाता श्रद्धेय गुरुदेव राजस्थान केसरी पण्डितरत्न श्री पुष्कर मुनि जी एवं समर्थ साहित्यस्रष्टा

गुरुदेव श्री देवेन्द्र मुनि जी महाराज हैं, और सहायक हैं मेरे ज्येष्ठ सहोदर श्री रमेश मुनि जी शास्त्री काव्यतीर्थ तथा सद्गुरुणी जी श्री पुष्पवती जी म. एवं मातेश्वरी श्री प्रकाशवती जी की प्रबल-प्रेरणा भी मुझे सदा उत्प्रेरित करती रही। जिससे यह संग्रह शीघ्र तैयार हो सका है।

इसका आकार-प्रकार जैसा भी कुछ है, वह भक्तिमती और गुणानुरागिणी जनता के सम्मुख है और वह सब गुरुदेव की सेवा में समर्पित है।

लोढ़ा धर्मशाला
अजमेर
२०-११-७३

राजेन्द्रमुनि शास्त्री

प्रकाशकीय

भगवान महावीर के पच्चीससौवीं निर्वाण तिथि के उपलक्ष में 'भगवान् महावीर की सूक्तियां' प्रकाशित करते हुए हमें परम आह्लाद है, भगवान् महावीर की वाणी आगम के नाम से विश्रुत है, जिसमें अगणित विचार रत्न भरे पड़े हैं, उस आगम साहित्य का मन्थन कर श्री राजेन्द्रमुनि शास्त्री ने सूक्तियों का अनूठा संकलन तैयार किया, यह संकलन अपने आप में मौलिक है। इसमें आध्यात्म, धर्म, नीति, कर्त्तव्य, साधना, समभाव, वीतराग आदि विषयों पर सूक्तियाँ संकलित की गयी है। यह संग्रह मुनि श्री जी ने श्री देवेन्द्र मुनि जी के निर्देश से सन् १९७२ में तैयार किया था, संकलन की सूक्तियां लगभग २५ सौ है, पर पुस्तक अत्यधिक बड़ी होने के भय से प्रस्तुत पुस्तक में एक हजार आठ सूक्तिया ही दी जा रही है यद्यपि सूक्तियों के अनेक संकलन अनेक संस्थाओं की ओर से समय-समय पर प्रकाशित हुए है, पर वे संकलन इतने बृहत्काय हो गए हैं कि उन्हें आज का प्रबुद्ध पाठक

ढ़ने से कतराता है। इसलिए हम इस संकलन को ाकेट बुक् साइज में दे रहे है।

राजेन्द्र मुनि जी परमश्रद्धेय राजस्थान केसरी पूज्य गुरुदेव श्री पुष्कर मुनि जी के पौत्र शिष्य हैं। आप हृदय से उदार, स्वभाव से मिलनसार और कार्य करने में कुशल है। आपने बनारस की धर्मशास्त्री, कलकत्ता की काव्यतीर्थ और पाथर्डी की जैन सिद्धान्त शास्त्री आदि अनेक परीक्षाएं समुत्तीर्ण की है।

आपकी अनेक रचनाएँ राजस्थान केशरी व्यक्तित्व और कृतित्व, भगवान महावीर : एक परिचय चौबीस तीर्थंकर : एक परिचय, देवेन्द्रमुनि शास्त्री साहित्यिक एक परिचय, प्रकाशन के पथ पर है। प्रस्तुत पुस्तक पाठको ने चाव से अपनायी तो हम शीघ्र ही अवशेष सूक्तियाँ भी प्रकाशित करना चाहते है।

प्रस्तुत पुस्तक को शीघ्र और मुद्रण कला की दृष्टि से सर्वाधिक सुन्दर बनाने का श्रेय स्नेह सौजन्य मूर्ति गाँधीवादी श्री जीतमल जी साहब लूणिया एव श्री प्रतापसिह जो लूणिया को है।

मंत्री

श्री तारक गुरु जैन ग्रन्थालय

अनुक्रमणिका

पृष्ठ

१. धर्म और नीति १–१७०

२. अध्यात्म और दर्शन १७१–३२३

३. बिखरे मोती ३२४–३२७

धर्म और नीति (१)

मंगल *
धर्म *
अहिसा *
सत्य *
अस्तेय *
ब्रह्मचर्य *
अपरिग्रह *
श्रद्धा *
तप *
साधना *
समभाव *
वीतराग *
सरलता *
सयम *
सद्गुण *
स्वाध्याय *
क्रोध *
मान *
माया *
लोभ *
विनय *
ब्राह्मण कौन ? *
रात्रिभोजन *
सदाचार *
सेवा *
सत्संग *
सतोप *
कर्त्तव्य *

मंगल

१

णमो तित्थयराणं

२

सन्तो सन्तिकरे लोए

३

अभयंकरे वीरे अणंतचक्खू

४

निव्वाणवादी णिह नायपुत्ते

५

लोगुत्तमे समणे नायपुत्ते

६

इसीण सेट्ठे तह वद्धमाणे

७

संघ नगर । भद्दंते ॥
अखंड़ चारित्त पागारा

८

णमो अरिहंताणं

मंगल

१

साधु साध्वी श्रावक श्राविका रूप तीर्थ की स्थापना करने वाले तीर्थंकर को नमस्कार हो ।

२

शान्तिनाथ इस लोक मे शान्ति करने वाले है।

३

प्रभु महावीर अभय देने वाले है और अनन्त चक्षु वाले है ।

४

निर्वाण वादियों मे ज्ञात पुत्र महावीर स्वामी सर्व श्रेष्ठ है ।

५

लोक मे सर्वोत्तम श्रमण ज्ञातृपुत्र महावीर है।

६

ऋषियो मे सर्वश्रेष्ठ महावीर वर्द्धमान है ।

७

अखण्ड चारित्र रूप प्राकार (कोट) वाले मे श्री सघ रूप नगर । तुम्हारा कल्याण हो । मंगल हो ।

८

अरिहन्तो को नमस्कार

९

णमो सिद्धाणं

१०

णमो आयरियाणं

११

णमो उवज्झायाणं

१२

णमो लोए सव्वसाहूणं

१३

चत्तारि मंगलं अरिहंता मंगल
सिद्धा मगलं साहू मंगलं
केवलिपन्नत्तो धम्मो मगलं

१४

नमो ते संसयातीत

१५

धम्मो मगल मुक्किट्ठं

१६

पावाणं जदकरणं तदेव खलु मंगलं परमं

९

सिद्धों को नमस्कार ।

१०

आचार्यों को नमस्कार

११

उपाध्यायो को नमस्कार

१२

सर्व साधुओं को नमस्कार

१३

मंगल चार है—अरिहन्त सिद्ध साधु और केवल प्ररूपित धर्म ।

१४

संशयातीत तुम्हें नमस्कार हो ।

१५

धर्म सबसे उत्कृष्ट मंगल है ।

१६

पाप कर्म न करना ही वस्तुतः परम मंगल है ।

२

धर्म

१७

धम्मो दीवो

१८

दीवे व धम्म

१९

धम्मे हरए बम्भे सन्ति तित्थे

२०

धम्मस्स विणओ मूलं

२१

इह माणुस्सए ठाणे
धम्म माराहिउं णरा

२२

धणेण किं धम्म धुराहिगारे

२३

धम्मं पि काउणं जो गच्छइ
परं भवं सो सुही होइ।

२४

धम्म चर सुदुच्चरं

धर्म

१७

संसार समुद्र मे धर्म ही द्वीप है ।

१८

धर्म दीपक की तरह अज्ञान अन्धकार को दूर करने वाला है ।

१९

धर्म रूपी तालाव में ब्रह्मचर्य रूप घाट है ।

२०

धर्म का मूल विनय है ।

२१

इस मनुष्य लोक में धर्माराधन के लिए मनुष्य ही समर्थ है ।

२२

धर्म रूपी धुरा के अंगीकार कर लेने पर धन से क्या ?

२३

जो धर्म का आचरण कर के परभव को जाता है वह सुखी होता है ।

२४

आचरण मे कठिनाई वाला, फल में सुन्दर ऐसे धर्म का तू आचरण कर ।

२५

धम्म विऊ उज्जू

२६

एस धम्मे धुवे निच्चे, सासए जिण देसिए

२७

एक्को हु धम्मो ताणं न विज्जई
अन्न मिहेह किंचि ।

२८

आयरियं विदित्ताणं सव्वदुक्खाविमुच्चई

२९

धम्म सद्धाएणं साया सोक्खेसु
रज्जमणा विरज्जइ

३०

दिव्वं च गइं गच्छन्ति
चरित्ता धम्ममारियं

३१

आणाए मामगं धम्मं

३२

णच्चा धम्मं अणुत्तरं
कय किरिए ण यावि मामए

२५

धर्म को समझने वाला सरल हृदयी होता है।

२६

जिन भगवान द्वारा उपदिष्ट यह धर्म ही ध्रुव है, नित्य, शाश्वत है।

२७

अकेला धर्म ही रक्षक है; अन्य कोई यहा पर रक्षक नही पाया जाता।

२८

आचरण योग्य धर्म को जानकर के सभी दु:ख नाश किये जा सकते है।

२९

धर्म के प्रति श्रद्धा से सातावेदनीय जनित सुखों पर विरक्ति पैदा हो जाती है।

३०

आर्य धर्म का आचरण करके अनेक महापुरुप दिव्य गति को जाते है।

३१

आज्ञानुसार चलना ही मेरा धर्म है।

३२

श्रेष्ठ धर्म को जानकर क्रिया करता हुआ ममत्व भाव को नही रखे।

३३

चरिज्ज धम्मं जिण देसियं विऊ

३४

धम्माणं कासवो मुहं

३५

सद्दहइ जिणाभिहियं सो धम्मरुइ

३६

दुविहे धम्मे पन्नते सुअधम्मे चेव
चरित्त धम्मे चेव

३७

तिविहे भगवया धम्मे सुअहिज्जिए
सुज्झाइए सुतवस्सिए

३८

चत्तारिधम्मदारा खंति मुत्ति अज्जवे मद्दवे

३९

विणओ वि तवो पि धम्मो

४०

एगे चरेज्ज धम्मं

४१

समियाए धम्मे आरिएहि पवेइए

३३

विद्वान पुरुष जिनभगवान द्वारा उपदिष्ट धर्म का आचरण करे।

३४

धर्म का मुख ऋषभ देव स्वामी है।

३५

जिन वचनों मे श्रद्धा करनाय ही धर्म रूची है।

३६

दो प्रकार का धर्म कहा गया है श्रुत धर्म और चारित्र धर्म।

३७

भगवान ने तीन प्रकार का धर्म बतलाया है सम्यक् प्रकार से सूत्रादि का अध्ययन, सम्यक् प्रकार से ध्यान और सम्यक् तप।

३८

चार प्रकार के धर्म द्वार है क्षमा विनय सरलता और मृदुता।

३९

विनय एक स्वयं तप है और वह आभ्यन्तर तप होने से श्रेष्ठतम धर्म है।

४०

भले ही कोई सहयोग न दे, अकेले ही धर्म का आचरण करना चाहिए।

४१

आर्य महापुरुषों ने समभाव मे धर्म कहा है।

४२

धम्मे ठिओ अविमणोनिव्वाणमभिगच्छई

४३

धम्मोमंगल मुक्किट्ठं अहिंसा संजमो तवो
देवा वित्तं नमंसन्ति जस्स धम्मेसयामणो ।।

४४

समयं मूढे धम्मं नाभिजाणइ ।

४५

सोच्चा जाणइ कल्लाणं सोच्चा जाणइपावगं ।
उभयपि जाणइ सोच्चा जं सेयं तं समायरे ।।

४६

माणुस्स विग्गहं लद्धुं सुई धम्मस्स दुल्लहा ।
जं सोच्चा पड़िवज्जति तव खंतिमहिंसयं ।।

४७

जहापुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ ।
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्स कत्थई ।।

४८

जागरियाधम्मीणं, आहम्मीणं च सुत्तयासेया

४२

जो विना किसी विमनस्कता से पवित्र चित्त से धर्म में स्थित है वह निर्वाण को प्राप्त करता है।

४३

धर्म सर्वश्रेष्ठ मंगल है, धर्म का अर्थ है अहिंसा, संयम, और, तप। जिसका मन धर्म में सदा रमा रहता है उसे देवता भी नमस्कार करते है।

४४

सदा विषय भोगों मे रहने वाला मनुष्य धर्म के तत्व को नही पहचान सकता।

४५

यह आत्मा सुनकर ही धर्म का मार्ग जानता है और सुनकर ही पाप का। दोनों मार्ग सुनकर ही जाने जाते है, जो श्रेयस्कर हो उसका आचरण करे।

४६

मनुष्य शरीर पाकर भी सद्धर्म का श्रवण दुर्लभ है जिसे सुन कर मनुष्य तप, क्षमा और अहिंसा को स्वीकार करते है।

४७

धर्मोपदेश जिस प्रकार धनवान के लिए है उसी प्रकार गरीब के लिए भी है। जिस प्रकार गरीब के लिए है उसी प्रकार धनवान के लिए भी है।

४८

धार्मिक पुरुषो का जागते रहना अच्छा है और पापी लोगों का सोते रहना अच्छा है।

४९
चत्तारि परमंगाणि दुल्लहाणीह जन्तुणो ।
माणुसत्तं सुई सद्धा संजमम्मिय वीरियं ।।

५०
जा जा वच्चइ रयणी न सा पड़िनियत्तई ।
धम्मं च कुणमाणस्स सफला जंति राइओ ।।

५१
जा जा वच्चइ रयणी न सा पड़िनियत्तई ।
अहम्मं कुणमाणस्स अफला जंति राइओ ।।

५२
जरा जाव न पीडेइ वाही जाव न वड्ढइ ।
जाविंदिया न हायंति ताव धम्म समायरे ।।

५३
अद्धाणं जो महन्तं तु अप्पाहेओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो दुहिहोइ छुहा तण्हाए पिड़िओ ।।

५४
एवं धम्मं अकाउणं जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो दुही होइ वाही रोगेहिं पीडिओ ।।

४९

संसार में चार साधनों का मिलना दुर्लभ है,
मनुष्यत्व, धर्म, श्रवण, श्रद्धा और संयम मे पुरुषार्थ।

५०

जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते है वे फिर कभी वापिस नही लौटते। जो मनुष्य धर्म करते है उसके वे रात दिन सफल हो जाते है।

५१

जो रात और दिन एक बार अतीत की ओर चले जाते है वे कभी वापिस नही लौटते जो मनुष्य अधर्म पाप करता है उसके वे रात दिन निष्फल जाते है।

५२

जब तक बुढापा नही सताता जब तक व्याधियाँ नही बढ़ती जव तक इन्द्रिया हीन अशक्त नही होती तब तक धर्म का आचरण कर लेना चाहिए।

५३

जो पथिक बिना पाथेय लिये ही लम्बी यात्रा पर चल पडता है, वह आगे जाता हुआ भूख तथा प्यास से पीड़ित हो कर अत्यन्त दुःखी होता है।

५४

इसी प्रकार जो मनुष्य बिना धर्माचरण किये परलोक जाता है वह भी वहाँ नाना प्रकार के आधिव्याधियो से पीड़ित होकर अत्यन्त दुःखी होता है।

५५

अद्धाण जो महन्तंतु सपाहे ओ पवज्जई ।
गच्छन्तो सो सुही होइ छुआ तण्हा विवज्जिओ ॥

५६

एवं धम्म पि काऊण जो गच्छइ परं भवं ।
गच्छन्तो सो सुही होइ अपकम्मे अवेयणे ॥

५७

जहा सागड़िओ जाणं सम्मं हिच्चा महापहं ।
विसमंभग्गमोइण्णो अक्खे भग्गम्मि सोयई ॥

५८

एवं धम्मं विउवक्कम्म अहमं पड़िवज्जिया ।
बाले मच्चुमुहं पत्ते अक्खे भग्गेव सोयई ॥

५९

जहा य तिन्नि वाणिया मूल घेत्तूण निग्गया ।
एगोऽत्थ लहइ लाभं एगोमूलेण आगओ ॥

६०

एगो मूलं पि हारित्ता आगओ तत्थ वाणिओ ।
ववहारे उवमा एसा एव धम्मे वियाणह ॥

५५

जो पथिक लम्बी यात्रा में अपने साथ पाथेय लेकर चलता है वह आगे चल कर भूख और प्लास से तनिक भी पीड़ित न होकर अत्यन्त सुखी होता है।

५६

इसी प्रकार जो मनुष्य भली-भाति धर्माचरण करके परलोक जाता है वह वहाँ जाकर लघुकर्मी तथा पीड़ा रहित होकर अत्यन्त सुखी होता है।

५७

जिस प्रकार मूर्ख गाड़ीवान जानता हुआ भी साफ मार्ग को छोड़कर विषममार्ग पर जाता है और गाड़ी की धुरी टूट जाने पर शोक करता है।

५८

उसी प्रकार अज्ञानी मानव भी, धर्म को छोड़कर और अधर्म को ग्रहण कर अन्त में मृत्यु के मुंह में पड़कर जीवन की धुरी टूटने पर शोक करता है।

५९

किसी समय तीन वणिक पुत्र मूल पूंजी लेकर धन कमाने निकले। उनमें से एक को लाभ हुआ, दूसरा अपनी मूल पूंजी ज्यो की त्यो बचा लाया।

६०

और तीसरा मूल को भी गवाकर वापस आया। यह व्यापार की उपमा है, इसी प्रकार धर्म के विषय मे भी जानना चाहिए।

६१

उत्तम धम्म सुई हु दुल्लहा

६२

गामे वा अदुवा रण्णे
नेव गामे नेव रण्णे धम्ममायाणह

६३

सोही उज्जुअभूयस्स धम्मो शुद्धस्स चिट्ठई

६४

एगा धम्म पड़िमा जं से आया पज्जवजाए

६५

पन्ना समिक्खए धम्मं

६६

विन्नाणेण समागम्म धम्म साहणमिच्छिउं

६७

पच्चयत्थं च लोगस्स नाणविह विगप्पणं

६१

उत्तम धर्म का श्रवण मिलना निश्चय ही दुर्लभ है।

६२

धर्म गाव में भी हो सकता है और जंगल मे भी, वस्तुतः धर्म न कही गाव में होता है और न कही जगल मे ही किन्तु वह तो अन्तरात्मा में होता है।

६३

सरल आत्मा की शुद्धि होती है और शुद्ध आत्मा मे ही धर्म स्थिर रह सकता है।

६४

धर्म ही एक ऐसा पवित्र अनुष्ठान है जिससे आत्मा का शुद्धिकरण होता है।

६५

साधक की अपनी प्रज्ञा ही समय पर धर्म की समीक्षा कर सकती है।

६६

विवेक ज्ञान से ही धर्म के साधनों का निर्णय होता है।

६७

धर्मो के वेष आदि के नाना विकल्प जन साधारण मे परिचय के लिए है।

अहिंसा

६८

दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं

६९

एवं खु नाणिणो सारं जं न हिंसइ किंचण

७०

अहिंसा निउणा दिट्ठा

७१

न हणे णो विघायए

७२

तसे पाणे न हिंसिज्जा

७३

सव्वेसिं जीवियं पियं

७४

पाणेय नाइ वाएज्जा
निज्जाइ उदगं व थलाओ

७५

न हिंसए किंचण सव्वलोए

अहिंसा

६८

दान में सर्वश्रेष्ठ अभयदान है।

६९

ज्ञानी के लिए यही सार है कि वह किसी की भी हिंसा न करे।

७०

अहिंसा निपुण यानी अनेक प्रकार के सुखों को देने वाली है।

७१

न तो मारें और न घात करें।

७२

त्रस प्राणियो की हिंसा मत करो।

७३

सभी को अपना जीवन प्यारा है।

७४

जो प्राणियों की हिंसा नही करता है उसके कर्म इस प्रकार दूर हो जाते हैं जैसे कि ढालू जमीन से पानी दूर हो जाता है।

७५

सम्पूर्ण लोक में किसी की भी हिंसा मत कर।

७६

न य वित्तासए परं

७७

दयाधम्मस्स खंतिए विप्पसीएज्ज मेहावी

७८

न हणे पाणिणो पाणे

७९

विरए वहाओ

८०

मुणी ! महब्भयं नाइ वाइज्ज कंचणं

८१

अणुपुव्वं पाणेहिं संजए

८२

अभय दाया भवाहि

८३

धम्मे ठिओ सव्व पयाणुकम्पी

८४

ताइणो परिणिव्वुडे

७६

दूसरो को त्रास मत दो

७७

मेधावी दयाधर्म के लिए क्षमाशील होता हुआ अपनी आत्मा को प्रसन्न करे।

७८

प्राणियो के प्राणो को मत हरो।

७९

हिंसा से विरत बने।

८०

हे मुनि ! किसी की भी हिंसा मत कर, इसमे महान भय रहा हुआ है।

८१

प्राणियो के साथ क्रम से सयमशील हो।

८२

अभय दान देने वाले बनो।

८३

धर्म मे स्थित होते हुए सभी जीवो पर अनुकम्पा करने वाले बनो।

८४

अभय दान देने वाले संसार से पार उतर जाते है।

८५

तसकाय समारम्भं जाव जीवाइंवज्जए

८६

एसखलु गंथे एस खलु मोहे
एस खलु मारे एस खलु णरए

८७

अप्पेगे हिंसिसु मेत्तिवा वहंति
अप्पेगे हिंसंति मेत्तिवा वहंति
अप्पेगे हिंसिस्संति मेत्तिवा वहंति

८८

आरम्भजं दुक्खमिणं

८९

आयओ बहिया पास

९०

अत्थिसत्थं मरेण परं
नत्थि असत्थं परेण पर

९१

सेहु पन्नाणमते बुद्धे आरंभो वरए

८५

त्रस काय का समारम्भ जीवन पर्यंत के लिए छोड़ दो।

८६

यह हिंसा ही निश्चय बंधन है, मोह है, यही मृत्यु है
और नरक है।

८७

'इसने मुझे मारा' कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं,
'यह मुझे मारता है' कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते है,
'यह मुझे मारेगा' कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते है।

८८

यह सब दुःख हिंसा में से उत्पन्न होता है।

८५

तसकाय समारम्भं जाव जीवाइंवज्जए

८६

एसखलु गंथे एस खलु मोहे
एस खलु मारे एस खलु णरए

८७

अप्पेगे हिंसिसु मेत्तिवा वहंति
अप्पेगे हिंसंति मेत्तिवा वहंति
अप्पेगे हिंसिस्संति मेत्तिवा वहंति

८८

आरम्भजं दुक्खमिणं

८९

आयओ बहिया पास

९०

अत्थिसत्थं मरेण परं
नत्थि असत्थं परेण पर

९१

सेहु पन्नाणमते बुद्धे आरंभो वरए

८५

त्रस काय का समारम्भ जीवन पर्यंत के लिए छोड़ दो।

८६

यह हिंसा ही निश्चय बंधन है, मोह है, यही मृत्यु हैं
और नरक है।

८७

'इसने मुझे मारा' कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं,
'यह मुझे मारता है' कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते है,
'यह मुझे मारेगा' कुछ लोग इस विचार से हिंसा करते हैं।

८८

यह सब दुःख हिंसा मे से उत्पन्न होता है।

८९

अपने समान ही बाहर दूसरो को देखे।

९०

हिंसा एक से एक बढ़कर है, परन्तु अहिंसा ऐक से एक बढ़कर नहीं है अर्थात् अहिंसा की साधना से बढ़कर श्रेष्ठ दूसरी कोई साधना नही।

९१

जो हिंसा से उपरत है वही प्रज्ञावान वुद्ध है।

९२

वयं पुण एव माइक्खामा
एवं भासामो, एवं परुवेमो
एवं पण्णवेमो, सव्वे पाणा
सव्वे भूया, सव्वे जीवा
सव्वे सत्ता, न हतव्वा
न अज्जावेयव्वा
न परिघेतव्वा
न पारियावेयव्वा
न उद्दवेयव्वा इत्थं
विजाणह नत्थिव्व दोसो
आरियवयणमेय

९३

पुव्वं निकाय समयं पत्तेयं
पत्तेयं पुच्छिस्सामि,
हं भो पवाइया ।
किं भे सायं दुक्ख असायं ?
समिया पडिवण्णे
या वि एवं बूया
सव्वेसि पाणाण
सव्वेसिं भूयाण सव्वेसिं
जीवाणं,, सव्वेसिं सत्ताणं
असायं अपरिनिव्वाणं
महब्भय दुक्खं

९२

हम ऐसा कहते है, ऐसा बोलते है, ऐसी प्ररुपणा करते है, ऐसी प्रज्ञापना करते है, कि किसी भी प्राणी किसी भी भूत किसी भी जीव और किसी भी सत्व को न मारना चाहिए न उन पर अनुचित शासन करना चाहिए न उनको गुलामो की तरह पराधीन बनाना चाहिए, न उन्हे परिताप देना चाहिए और न उनके प्रति किसी प्रकार का उपद्रव करना चाहिए। उक्त अहिसा धर्म मे किसी प्रकार का दोप नही है यह ध्यान मे रखिए, अहिसा पवित्र सिद्धान्त है।

●

९३

सर्व प्रथम विभिन्न मत मतान्तरों के प्रतिपाद्य सिद्धान्त को जानना चाहिए और फिर हिसा प्रतिपाद्य मतवादियों से पूछना चाहिए कि हे ! प्रवादियों तुम्हें सुख प्रिय है या दु ख ? हमें दु.ख अप्रिय है, सुख नही—यह सम्यक् स्वीकार कर लेने पर उन्हे स्पष्ट कहना चाहिए कि तुम्हारी तरह विश्व के समस्त प्राणीजीव भूत और सत्वों को भी दु.ख अशान्ति देने वाला है, महाभय का कारण है और दुःख रूप है।

९४

तुमंसि नाम तं चेव ज हृतव्वं ति मन्नसि,
तुमंसि नाम तं चेव ज अज्जावेयव्वं
तं मन्नसि, तुमसि नाम तं चेव
ज परियावेयव्व ति मन्नसि ।

९५

जे वऽन्ने एएहिं काएहिं
दंडं समारंभंति तेसिं
पि वयं लज्जामो

९६

तमाओ ते तमं जंति
मंदा आरंभ निस्सिया

९७

वेराइं कुव्वई वेरी
तओ वेरेहिं रज्जती

९८

ते आत्तओ पासइ सव्वलोए

९९

भूएहिं न विरुज्झेज्जा

९४

जिसे तूं मारना चाहता है वह तूं ही है, जिसे तूं शासित करना चाहता है वह तूं ही है, जिसे तूं परिताप देना चाहता है, वह तूं ही है।

९५

यदि कोई अन्य व्यक्ति भी धर्म के नाम पर जीवों की हिंसा करते हैं तो हम इससे भी लज्जानुभूति करते हैं।

९६

हिंसा में लगे हुए अज्ञानी जीव अन्धकार से अन्धकार की ओर जा रहे हैं।

९७

वैर वृत्ति वाला जब देखो तब वैर ही करता रहता है वह वैर को बढाने में रस लेता है।

९८

तत्त्वदर्शी समग्र प्राणिजनो को अपनी आत्मा के समान देखता है।

९९

किसी भी प्राणी के साथ वैर विरोध न बढ़ावे।

१००

किभया पाणा ? दुक्खभया पाणा
दुक्खे केण कडे जीवेणं कडे पमाएणं

१०१

एगं अन्नयरं तसं पाणं हणमाणे
अणेगे जीवे हणइ

१०२

एगं इसिं हणमाणे अणंते जीवे हणइ

१०३

अट्ठा हणंतिअणट्ठा हणंति

१०४

कुद्धाहणंति, लुद्धा हणति,मुद्धा हणंति

१०५

न य अवेदयित्ता अत्थिहु मोक्खो

१००

प्राणि किससे भय पाते है ?
दु:ख से
दु:ख किसने किया है ?
स्वयं आत्मा ने अपनी ही भूल से।

१०१

एक त्रस जीव की हिसा करता हुआ आत्मा तत्संवन्धी अनेक जीवों की हिंसा करता है।

१०२

एक अहिंसक ऋषि की हिंसा करने वाला एक प्रकार से अनन्त जीवो की हिसा करने वाला होता है।

१०३

कुछ लोग प्रयोजन से हिंसा करते हैं और कुछ लोग विना प्रयोजन भी हिंसा करते है।

१०४

कुछ लोग क्रोध से हिंसा करते है
कुछ लोग लोभ से हिंसा करते हैं
कुछ लोग अज्ञान से हिसा करते है।

१०५

हिसा के कटु फल को भोगे विना छुटकारा नही !

१०६

पाणवहो चण्डो रुद्दो खुद्दो
अणारियो निग्घिणो निसंसो महब्भयो

१०७

अहिसा तस थावर सव्वभूय खेमंकरी

१०८

भगवती अहिसा भीयाणं विव सरणं

१०९

अहिंसा निउणा दिट्ठा सव्वभूएसु संजमो

११०

सव्वे जीवा वि इच्छंति जीविऊँ न मरिज्जिऊं

१११

नय वित्तासए परं

११२

वेराणुबद्धा नरयं उवेंति

१०६

हिंसा चण्ड है, रौद्र है, क्षुद्र है अनार्य है,
करुणा रहित है क्रूर है और महा भयंकर है।

१०७

अहिसा त्रस और स्थावर सब प्राणियों को कुशल क्षेम
करने वाली है।

१०८

जैसे भयाक्रान्त के लिए शरण की प्राप्ति हितकर है।
वैसे ही प्राणियो के लिए भगवती अहिंसा हितकर है।

१०९

सब प्राणियो के प्रति स्वय को संयत रखना यही अहिंसा
का पूर्ण दर्शन है।

११०

समस्त प्राणी सुख पूर्वक जीना चाहते हैं
मरना कोई नही चाहता।

१११

किसी भी जीव को कष्ट नही देना चाहिए।

११२

जो वैर की परम्परा को लम्बा किया करता है वह
नरक को प्राप्त होता है।

११३

न हणे पाणिणो पाणे भय वेराओ उवराए

११४

अणिच्चे जीव लोगम्मि किं हिंसाए पसज्जसि ?

११५

सव्वेपाणा परमाहम्मिया

११६

आयतुले पयासु

११७

मेत्ति भूएसु कप्पए

११८

भूएहि न विरुज्झेज्जा।

११३

जो भय और वैर से मुक्त है वे किसी भी प्राणी की हिंसा नही करते है।

११४

जीवन अनित्य है क्षण भंगुर है फिर क्यो हिंसा मे आसक्त होते हो ?

११५

सभी प्राणी सुख के अभिलाषी है।

११६

प्राणियो के प्रति आत्मतुल्य भाव रक्खो

११७

समस्त जीवों पर मैत्री भाव रक्खो

११८

किसी भी प्राणी के साथ वैर विरोध न वढावें।

१२६

से दिट्ठिमं दिटिठ न लूसएज्जा

१२७

अलियवयणं अयसकरं वेरकरगं
मणसंकिलेसवियरणं

१२८

असंत गुणुदीरका य संत गुण नासकाय

१२९

सच्च सभासकं भवति सबभावाणं

१३०

तं सच्चं खु भगवं

१३१

सच्चं लोगम्मि सारभूयं गंभीरतरं महासमुद्दाओ

१३२

सच्चं सोमत्तंर चंद मंडलाओ दित्ततरं सुरमंडलाओ

१३३

सच्चं च हियं च मियं च गाहणं च

१२६

सम्यग्दृष्टि साधक को सत्य दृष्टि का अपलाप नहीं करना चाहिए।

१२७

असत्य वचन बोलने से बदनामी होती है परस्पर वैर बढता है और मन में संक्लेश की वृद्धि होती है।

१२८

असत्यभाषी लोग, गुणहीन के लिए गुणों का बखान करते है और गुणी के वास्तविक गुणों का अपलाप करते है।

१२९

सत्य समस्त भावो तथा विषयों का प्रकाश करने वाला है।

१३०

सत्य ही भगवान है।

१३१

संसार मे सत्य ही सारभूत है सत्य महासमुद्र से भी अधिक गभीर है।

१३२

सत्य चन्द्र मण्ड़ल से भी अधिक सौम्य है, सूर्य मण्डल से भी अधिक तेजस्वी है।

१३३

ऐसा सत्य वचन बोलना चाहिए जो हित मित और ग्राह्य हो।

१३४

सच्चंपि संजमस्स उवरोह
कारकं किंचि वि न वत्तव्व

१३५

अप्पणो थवणा परेसु निदा

१३६

कुद्धो सच्चं शीलं विणयं हणेज्ज

१३७

अणुमायं पि मेहावि मायामोसं विवज्जए

१३८

मुसावाओउ लोगम्मि सव्वसाहूहिं गरहिओ

१३९

सच्चा विसा न वत्तव्वा जओ पावस्स आगओ

१४०

अप्पणा सच्च मेसेज्जा

१४१

भासियव्वं हियं सच्चं

१३४

सत्य भी यदि संयम का घातक हो तो नही बोलना चाहिए।

१३५

अपनी प्रशसा तथा दूसरों की निन्दा भी असत्य के समकक्ष है।

१३६

क्रोध में अंधा हुआ व्यक्ति सत्य शील और विनय का नाश कर देता है।

१३७

आत्मविद साधक अणुमात्र भी, माया और असत्य का सेवन न करे।

१३८

विश्व के सभी सत्पुरुषो ने असत्य की निंदा की है।

१३९

ऐसा सत्य भी न बोलना चाहिए जिससे किसी प्रकार का पाप का आगमन होता हो।

१४०

अपनी स्वय की आत्मा के द्वारा सत्य का अनुसंधान करो।

१४१

सदा हितकारी सत्य वचन बोलना चाहिए।

१४२

लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं

१४३

मुसं परिहरेभिक्खू

१४४

मातिट्ठाणं विवज्जेज्जा

१४५

मूसं न बूयामुणि अत्तगामी

१४६

हिंसगं न मुसं बूआ

१४७

सच्चे तत्थ करेज्जु वक्कमं

१४८

मुसाभान्सानिरत्थिया

१४९

सावज्ज न लवे मुणी

१५०

अप्पणट्ठा परट्ठा, वा, कोहा वा जइ वा भया
हिंसगं न मुस बूया, नो वि अन्नं वयावए

१५१

तहेव फरुसा भासा गुरु भू ओवा घइणी

१४२

मनुष्य लोभ से प्रेरित होकर असत्य बोलता है।

१४३

भिक्षु असत्य का परिहार करदे।

१४४

छल कपट के स्थान को छोड़िये।

१४५

आत्मा को मोक्ष में ले जाने की इच्छावाला मुनि झूंठ नहीं बोले।

१४६

हिंसा पैदा करने वाला झूठ मत बोलो।

१४७

जो सत्य हो उसी में पराक्रम करो।

१४८

असत्य भाषा निरर्थक है।

१४९

मुनि पाप कारी भाषा नही बोले।

१५०

निर्ग्रन्थ अपने स्वार्थ के लिए या दूसरों के लिए क्रोध से या भय से किसी प्रसंग पर दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाला सत्य या असत्य वचन न तो स्वयं बोले न दूसरों से बुलवाये।

१५१

जो भाषा कठोर हो और दूसरों को पीड़ा पहुँचाने वाली हो वैसी भाषा न बोले।

१५२

सच्चेण महासमुद्दमज्झे वि चिट्ठन्ति न निमज्जति

१५३

सच्चं जसस्स मूलं

१५४

सच्चं विस्सासकारणं परमं

१५५

सच्च सग्ग द्दारं

१५६

सच्चं सिद्धिइ सोपाणं

१५७

नलवे असाहु साहुत्ति साहु साहुत्ति आलवे

१५८

ओह तहियं फरुसं वियाणे

१५९

मणुयगणाणं वंदणिज्जं अमरगणाणं अच्चणिज्जं

१६०

सया सच्चेण सम्पन्ने मेत्तिं भूएसु कप्पए

१५२

सत्य के प्रभाव से मनुष्य महासमुद्र में भी सुरक्षित रहते है डूबते नही ।

१५३

सत्य यश का मूल है ।

१५४

सत्य विश्वास का परम कारण है ।

१५५

सत्य स्वर्ग का द्वार है ।

१५६

सत्य ही सिद्धि का सोपान है ।

१५७

किसी स्वार्थ या दवाव के कारण असाधु को साधु नही कहना चाहिए, साधु को ही साधु कहना चाहिए ।

१५८

सत्य वचन भी यदि कठोर हो तो वह मत बोलो ।

१५९

सत्य मनुष्यो द्वारा स्तुत्य तथा देवों द्वारा अर्चनीय है ।

१६०

जिसकी अन्तरात्मा सदा सत्य भावो से सम्पन्न है उसे विश्व के प्राणीमात्र के साथ मित्रता रखनी चाहिए ।

अस्तेय

१६१

अणुन्नविय गेण्हियव्वं

१६२

अदिन्नादाणाओ विरमणं

१६३

लोभाविले आययई अदत्तं

१६४

दन्तसोहणमाइस्स अदत्तस्स विवज्जणं

१६५

असंविभागी न हु तस्स मोक्खो

१६६

परदव्व हरा नरा निरणुकंपा निरवेक्खा

१६७

परसंतिगऽभेज्जलोभमूलं

अस्तेय

१६१

किसी भी चीज को आज्ञा लेकर ग्रहण करनी चाहिए।

१६२

चोरी से दूर रहो।

१६३

जब व्यक्ति लोभ से अभिभूत होता है तब चौर्य कर्म के लिए प्रवृत्त होता है।

१६४

अस्तेय व्रत में निष्ठा रखने वाला व्यक्ति बिना किसी कि अनुमति के यहां तक कि दात कुरेदने के लिए तिनका भी नही लेता।

१६५

जो सविभागी प्राप्त सामग्री को साथियो मे बाटता नही है उसकी मुक्ति नही होती है।

१६६

दूसरो का धन हरण करने वाले मनुष्य निर्दय एवं परभव की उपेक्षा करने वाले होते है।

१६७

पर धन मे गृद्धि का मूल हेतु लोभ है और यही चौर्य कर्म है।

१६८

संविभाग सीले, संगहोवग्गहकुसले
से तारिसए आराहए वयमिणं

१६९

असंविभागी, असगहरुई···अप्पमाणभोई···
से तारिसए ताराहए वयमिणं

१७०

तइयं च अदत्तादाणं हरदहमरण भयकलुस
तासण परसतिमऽभेज्ज लोभमूलं···········
अकित्तिकरणं अणज्जं·····साहुगरहणिज्जं
पियजणमित्रजण भेद विप्पीतिकारकं रागदोसबहुलं

१७१

रुवे अतित्तो य परिग्गहे य
सत्तोवसत्तो न उवेइ तुट्ठिं
अतुट्ठिदोसेण दुही परस्स
लोभाविले आययई अदत्तं

१६८

जो संविभागशील है, सग्रह और उपग्रह में कुशल है वही अस्तेयव्रत की सम्यक आराधना कर सकता है।

१६९

जो असंविभागी है, असग्रहरुचि है, अप्रमाण भोगी है, वह अस्तेय व्रत की सम्यक आराधना नही कर सकता है।

१७०

तीसरा अदत्ता दान; दूसरो के हृदय को दाह पहुँचाने वाला, मरण भय पाप कष्ट तथा पर द्रव्य-की लिप्सा का कारण तथा लोभ का कारण है। यह अपयश का कारण है, अनार्य कर्म है, सन्त पुरुपो द्वारा निन्दित है, प्रियजन और मित्रजनो मे भेद करने वाला है, तथा अनेकानेक रागद्वेप को उत्पन्न करने वाला है।

१७१

जो रूप मे अतृप्त होता है उसकी आसक्ति बढ़ती ही जाती है इसलिए उसे सन्तोप नही होता है। असन्तोप के दोष से दु:खित होकर वह दूसरे की सुन्दर वस्तुओं का लोभी बनकर उन्हें चुरा लेता है।

१७२

चित्तमंतमचित्तं वा अप्पं वा जइ वा बहु
दन्त सोहणमित्तं पि उग्गहं से अनाइया
तं अप्पणा न गिण्हन्तिनो, विगिण्हावए परं
अन्नं वा गिण्हमाणंपि नाणु जाणंति संजया

१७३

अदत्तादाण अकित्तिकरणं
अणज्जं सया साहुगरहणिज्जं

१७४

अदिन्नमन्नेसु य णो गहेज्जा

१७२

सचित्त पदार्थ हो, या अचित्त, अल्प मूल्य वाला पदार्थ हो या वहुमूल्य, और तो क्या ? दांत कुरेदने की शलाका भी जिस गृहस्थ के अधिकार में हो, उसकी विना आज्ञा प्राप्त किए पूर्ण संयमी साधक न तो स्वयं ग्रहण करते है, न दूसरों को ग्रहण करने के लिए उत्प्रेरित करते है।

१७३

अदत्तादान चोरी अपयश करने वाला अनार्य कर्म है। यह सभी भले आदमियो द्वारा सदैव निन्दनीय है।

१७४

विना दी हुयी किसी की कोई भी चीज नहीं लेना चाहिए।

ब्रह्मचर्य

१७५

नाइमत्तपाण भोयणभोई से निग्गंथे

१७६

तवेसुवा उत्तम बंभचेरं

१७७

तम्हा उवज्जए इत्थी
विसलित्तं व कण्टगंतच्चा

१७८

णो पाण भोयणस्स अतिभत्तं
आहारए सया भवई

१७९

बंभचेरं उत्तमतवनियम णाणदंसण
चरित्तसम्मत्त विणय मूल

१८०

जंमिय भग्गंमि होई सहसा सव्वं भग्गं जं मिय
आराहियंमि आराहियं वयमिणं सव्वं

ब्रह्मचर्य

१७५

जो आवश्यकता से अधिक भोजन नही करता, वही ब्रह्मचर्य का साधक सच्चा निर्ग्रन्थ है।

१७६

तपों मे सर्वोत्तम ब्रह्मचर्य तप है

१७७

ब्रह्मचारी स्त्रीसंसर्ग को विषलिप्त कण्टक के समान मानकर उससे बचता रहे।

१७८

ब्रह्मचारी को कभी अधिक मात्रा मे भोजन नही करना चाहिए।

१७९

ब्रह्मचर्य, उत्तम तप, नियम, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, सम्यक्त्व और विनय का मूल है।

१८०

एक ब्रह्मचर्य के नष्ट होने पर सहसा अन्य सब गुण नष्ट हो जाते हैं। एक ब्रह्मचर्य की आराधना कर लेने पर, सब शील, तप विनय आदि व्रत आराधित होते हैं।

१८१

अणेगा गुणा अहीणा भवंति एक्कम्मि बंभचेरे

१८२

स एव भिक्खू जो सुद्धं चरइ बंभचेरं

१८३

देव दाणवगंधव्वा जक्ख रक्खस्स किन्नरा ।
बंभयारिं नमसंति दुक्करं जे करंति ते ।।

१८४

इत्थिओ जे ण सेवंति आइ मोक्खा हु ते जणा

१८५

न तं सुहं काम गुणेसु रायं
जं भिक्खुणं सील गुणे रयाणं

१८६

विभूसं परिवज्जेज्जा सरीर परिमंडणं ।
बंभचेर रओ भिक्खू सिंगारत्थं न धारए ।।

१८७

सद्दे रुवे य गन्धे रसे फासे तहे वय
पंचविहे कामगुणे निच्चसोपरिवज्जए

१८१

एक ब्रह्मचर्य की साधना से अनेक गुण स्वतः अधीन हो जाते हैं।

१८२

जो शुद्ध भाव से ब्रह्मचर्य पालन करता है, वस्तुतः वही भिक्षु है।

१८३

देवता, दानव, गंधर्व यक्ष, राक्षस और किन्नर सभी ब्रह्मचर्य के साधक को नमस्कार करते है क्योकि वह एक बहुत दुष्कर कार्य है।

१८४

जो पुरुष स्त्रियों का सेवन नही करते, वे मोक्ष प्राप्ति मे सबसे अग्रसर है।

१८५

जो सुख, शील-गुण में रत भिक्षुओ को प्राप्त होता है, वह सुख, काम भोगों में राग रखने से नही मिल सकता।

१८६

ब्रह्मचर्य-साधनारत साधक-भिक्षु शृंगार का वर्जन करे और शरीर को शोभा सज्जात्मक शृंगार धारण न करे।

१८७

ब्रह्मचारी शब्द, रूप, गन्ध, रस और स्पर्श इन पांच प्रकार के काम गुणों का सदा त्याग करे।

१८८

जहा कुम्मे सअंगाइं सए देहे समाहरे ।
एवं पावाइं मेहावी अज्झप्पेण समाहरे ॥

१८९

रसापगामं न निसेवियव्वा पायंरसादित्तिकरा नराणं ।
दित्तं च कामा समभिद्दवंति दुमं जहा साउफलं व पक्खी ॥

१९०

लद्धे कामे ण पत्थेज्जा

१९१

बम्भयारिस्स इत्थी विग्गहओ भयं

१९२

नाइमत्तं तु भुंजिज्जा बम्भचेररओ

१९३

णो निग्गंथं इत्थीणं पुव्वरयं
पुव्वकीलियं अणुसरेज्ज

१९४

संमिरूम भावं पयहे पयासु

१८८

जिस प्रकार कछुआ अपने अगों को अन्दर सिकोड़ कर भय-मुक्त हो जाता है, उसी प्रकार साधक अध्यात्मयोग के द्वारा अन्तरात्माभिमुख होकर अपने आप को विषयों से वचाये रखे।

१८९

ब्रह्मचारी को घी और दूध आदि रसों का सेवन नही करना चाहिए। क्योकि रस प्रायः उद्दीपक होते है, उद्दीत पुरुप के निकट काम वासना वैसे ही चली जाती है, जैसे स्वादिष्ट फल वाले वृक्ष के पास पक्षी चले आते है।

१९०

भोगों के प्राप्त होने पर भी उनकी इच्छा नही करे।

१९१

ब्रह्मचारी के लिए स्त्री के शरीर से भय रहता है।

१९२

ब्रह्मचर्य में रत होता हुआ अतिमात्रा में भोजन नहीं करे।

१९३

साधु स्त्रियो के साथ पूर्वकाल में भोगे हुए भोगों को याद होने नही करे।

१९४

वैराग्य भावना से श्रेष्ठ धर्म रूप श्रद्धा उत्पन्न होती है।

१९५

विसएसु मणुन्नेसु पेमं नाभि निवेसए

१९६

नारीसु नोव गिज्झेज्जा। धम्मं च पेसलं णच्चा।

१९७

नय रुवेसु मणं करे

१९८

निव्विण्ण चारी अरए पयासु

१९९

विरते सिणाणाइसु इत्थिया सु

२००

इत्थि निलयस्स मज्झे न बम्भयारिस्स खमो निवासो

२०१

गुत्तिंदिए गुत्त बम्भयारी सया अप्पमत्ते विहरेज्ज

२०२

सव्विंदियाभिनिव्वुडे पयासु

२०३

इत्थि याहिं अणगारा संवासेण णासमुवयंति

१९५

मन के चाहे हुए विषयों में मोह का आग्रह मत करो, मोहग्रस्त न बनो।

१९६

साधक धर्म को सुन्दर समझ कर, स्त्रियों का लोभ नहीं करे।

१९७

रूप विषयों में मन को न लगाओ।

१९८

वैराग्यशील होकर स्त्रियों के प्रति रतिभावना नही लाए।

१९९

स्नान आदि शृंगारिक कार्यों से और स्त्रियों से विरक्त रहो।

२००

स्त्रियों के निवास स्थल पर ब्रह्मचारी का निवास क्षम्य नहीं है।

२०१

जितेन्द्रिय और गुप्तब्रह्मचारी सदा अप्रमादी होकर ही विचरे।

२०२

स्त्रियों से सभी इन्द्रियों द्वारा दूर ही रहना चाहिए।

२०३

अणगार स्त्रियों के साथ सहवास करने से नष्ट होते है।

२०४

जा जा दिच्छसि नारीओ अट्ठि अप्पा भविस्ससि

२०५

न चरेज्ज वेस सामंते

२०६

अरए पयासु

२०७

अविवास सयं नारी बम्भयारी विवज्जए

२०८

थी कहं तु विवज्जए

२०९

जे विन्नवणा हिऽजोसिया संतिन्नेहिं समं वियाहिया

२१०

सुबंभचेरं वसेज्जा

२११

उग्गं महव्वयं, धारेयव्वं सुदुक्करं

२१२

कुसीलवड्ढणं ठाणं दूरओ परिवज्जए

२०४

काम भावना से जिन जिन नारियों की ओर देखोगे, उतनी ही वार आत्मा अस्थिर होगी ।

२०५

वेश्या के मकान के पास नहीं जाए ।

२०६

स्त्रियों से विरक्त रहना चाहिए ।

२०७

ब्रह्मचारी सौ वर्ष की आयु वाली स्त्री से भी दूर ही रहे ।

२०८

स्त्रीकथा को सर्वथा छोड़ दो ।

२०९

जो स्त्रियो द्वारा सेवित नहीं है, वे सिद्ध पुरुषों के समान ही कहे गए है ।

२१०

सुब्रह्मचर्य रूप धर्म में रहे यानी ब्रह्मचर्य का पालन करें ।

२११

जो उग्र है महाव्रत है सुदुष्कर है, ऐसे ब्रह्मचर्य को धारण करना चाहिए ।

२१२

दुर्गन्ध के फैलाने वाले स्थान को दूर ही से छोड़ दें ।

अपरिग्रह

२१७

बहुं पि लद्धुं न निहे, परिग्गहाओ अप्पाणं अवसक्किज्जा

२१८

परिग्गह निविट्ठाण वेरं तेसि पवड्ढई

२१९

लोभ कलि कसाय महक्खंधो
चितासय निचिय विपुल सालो

२२०

नत्थि एरिसो पासो पडिबंधो
अत्थि सव्व जीवाणं सव्वलोए

२२१

अपरिग्गह संकुड़ेण लोगमि विहरियऽव्व

२२२

अणुन्नविय गेण्हियव्वं

२२३

मुच्छा परिग्गहो वुत्तो

अपरिग्रह

२१७

अधिक मिलने पर भी संग्रह न करें। परिग्रह वृत्ति से अपने को दूर रखे।

२१८

जो परिग्रह में व्यस्त है वे संसार मे अपने प्रति वैर ही बढ़ाते है

२१९

परिग्रह रूप वृक्ष के स्कन्ध है लोभ, क्लेष, कषाय तथा चिता रूपी सैंकडों ही सघन और विस्तीर्ण उसकी शाखाएं है।

२२०

समूचे ससार मे परिग्रह के समान प्राणियों के लिए दूसरा कोई जाल एवं वन्धन नही है।

२२१

अपने को अपरिग्रह भावना से सवृत्त कर लोक मे विचरण करना चाहिए।

२२२

दूसरे की कोई भी चीज हो आज्ञा लेकर ग्रहण करनी चाहिए।

२२३

मूर्छाभाव ही परिग्रह कहा गया है।

२२४
सव्वारम्भ परिच्चागो निम्ममत्तं

२२५
वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते
इमम्मि लोए अदुवा परत्था

२२६
नत्थि एरिसो पासो पड़िबंधो अत्थि
सव्व जीवाणं सव्वलोए

२२७
इच्छा हु आगास समा अणंतिया

२२८
धणधन्न पेसवग्गेसु परिग्गह विवज्जणं
सव्वारम्भ परिच्चाओ निम्ममत्तं सुदुक्करं

२२९
जयानिव्विदए भोए जे दिव्वे जे य माणुसे
तया चयइ संजोगं सब्भितर बाहिरं

२३०
जंपि वत्थ च पाय वा कंबलं पाय पुच्छण
जं पि सजम लज्जट्ठा धारंति परिहरति य

२२४

सभी प्रकार के आरम्भ का परित्याग करना ही निर्ममत्व है ।

२२५

प्रमत्त पुरुष धन के द्वारा न तो इस लोक में अपनी रक्षा कर सकता है और न परलोक में ही ।

२२६

विश्व के सभी प्राणियों के लिए परिग्रह के समान दूसरा कोई जाल नही, बन्धन नही ।

२२७

इच्छा आकाश के समान अनन्त है ।

२२८

धन धान्य नौकर चाकर आदि का परिग्रह त्यागना, सर्व हिंसात्मक प्रवृत्तियो को छोडना और निरपेक्ष भाव से रहना यह अत्यन्त दुष्कर है ।

२२९

जब मनुष्य दैविक और मनुष्य सम्बन्धी भोगो से विरक्त हो जाता है, तब वह आभ्यन्तर और बाह्य परिग्रह को छोड़कर आत्म-साधना मे जुट जाता है ।

२३०

जो भी वस्त्र पात्र कम्बल और रजोहरण है उन्हे मुनि संयम और लज्जा की रक्षा के लिए ही रखते है किसी समय वे संयम की रक्षा के लिए इनका परित्याग भी करते है ।

२३१

जे पाव कम्मेहि धण मणूसा
समाययन्ती अमयं गहाय
पहाय ते पास पयट्ठिए नरे
वेराणु बद्धा नरयं उवेंति

२३२

जस्सि कुले समुप्पन्ने जेहिं वा संवसे नरे
ममाइ लुप्पई वाले अन्ने अन्नेहिं मुच्छिए

२३३

कसिणंपि जो इमलोयं
पड़िपुण्णं दलेज्ज इक्कस्स
तेणाऽवि से न संतुस्से
इइ दुप्पूरए इमे आया

२३४

विडमुब्भेइमं लोणं तेल्ल सप्पि च फाणिय
न ते सन्निहिमिच्छन्ति नायपुत्त वओरया

२३५

जे सिया सन्निहिकामे गिही पव्वइए न से

२३१

जो मनुष्य धन को अमृत मानकर अनेक पाप कर्मों द्वारा उसका उपार्जन करते हैं वे धन को छोड़कर मौत के मुंह में जाने को तैयार हैं। वे वैर से बंधे हुए मरकर नरकवास प्राप्त करते है।

२३२

अज्ञानी मनुष्य जिस कुल में उत्पन्न होता है अथवा जिसके साथ निवास करता हैं उसमें ममत्व भाव रखता हुआ अपने से भिन्न वस्तुओ में इस मूर्च्छाभाव से अन्त में वह वहुत दुःखित होता है।

२३३

यदि धन धान्य परिपूर्ण यह सारी सृष्टि किसी एक व्यक्ति को दे दी जाय तव भी उसे संतोष होने का नहीं क्योंकि लोभी आत्मा की तृष्णा दुष्पूर होती है।

२३४

जो लोग भगवान महावीर के वचनों में अनुरक्त है वे मक्खन, नमक, तेल, घृत, गुड़ आदि किसी भी वस्तु के संग्रह करने का मन में संकल्प तक नही लाते।

२३५

जो साधु मर्यादा विरुद्ध कुछ भी संग्रह करना चाहता है वह साधु नहीं वल्कि गृहस्थ ही है।

२३६

अन्ने हरंति तं वित्तं कम्मो कम्मेहि किच्चतो

२३७

कामे कमाही कमियं खु दुक्खं

२३८

जे ममाइअं मइं जहाइ से जहाइ ममाइअं

२३९

से हु दिट्ठभए मुणी जस्स नत्थि ममाइअं

२४०

तिविहे परिग्गहे पण्णत्ते तं जहा
कम्म परिग्गहे, सरीर परिग्गहे,
बाहिर भंडमत्त परिग्गहे,

२४१

लोहस्सेस अणुप्फासो मन्ने अन्नयरामवि

२३६

संचय किया हुआ धन यथा समय दूसरे उडा लेते हैं किन्तु संग्रही को अपने पाप कर्मों का दुष्फल भोगना ही पड़ता है।

२३७

कामनाओ का अन्त करना ही दुःख का अन्त करना है।

२३८

जो साधक अपनी ममत्व बुद्धि का त्याग कर सकता है वही परिग्रह का त्याग करने में समर्थ हो सकता है।

२३९

जिसकी चित्तवृत्ति से ममत्वभाव निकल चुका है वही संसार के भय स्थानो को सुन्दर रीति से देख सकता है।

२४०

परिग्रह तीन प्रकार का है—कर्म परिग्रह, शरीर परिग्रह, वाह्य-भण्ड़ मात्र उपकरण परिग्रह।

२४१

सग्रह करना यह अन्दर रहने वाले लोभ की झलक है।

श्रद्धा

२४२

सद्धा परमदुल्लहा

२४३

जाए श्रद्धाए निक्खंतो तमेव
अणु पालेज्जा विजहित्ता विसोत्तियं

२४४

वितिगिच्छा समावन्नेणं
अप्पाणेणं नो लहई समाहिं

२४५

कहं कह वा विति गिच्छतिण्णे

२४६

अदक्खु व दक्खु वाहियं सद्दहसु

२४७

संसयं खलु सो कुणइ जो मग्गे कुणइ घरं

श्रद्धा

२४२

धर्म में श्रद्धा होना अत्यन्त दुर्लभ है ।

२४३

जिस श्रद्धा के साथ निष्क्रमण किया है, साधनापथ अपनाया है, उसी श्रद्धा के साथ मन की शंका या कुण्ठा से दूर रहकर उसका अनुपालन करना चाहिए ।

२४४

शंकाशील व्यक्ति को कभी समाधि नही मिलती ।

२४५

मनुष्य को कैसे न कैसे मन की विचिकित्सा से पार हो जाना चाहिए ।

२४६

नही देखने वालों ! तुम देखने वाले की बात पर श्रद्धा रखकर चलो ।

२४७

साधना में संशय वही करता है जो कि मार्ग में ही रुक जाना चाहता है ।

२४८

सद्धा खमं णे विणइत्तु रागं

२४९

सुई च लद्धुं सद्धं च वीरियं पुण दुल्लहं
बहवे रोयमाणावि णो य णं पडिवज्जई

२५०

धम्मसद्धाएणं सायासोक्खेसु रज्जमाणे विरज्जइ

२५१

सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा

२४८

धर्म श्रद्धा हमें आसक्ति से मुक्त कर सकती है।

२४९

श्रुति और श्रद्धा प्राप्त होने पर भी संयम मार्ग में वीर्य पुरुषार्थ होना अत्यन्त कठिन है। बहुत से लोग श्रद्धा सम्पन्न होते हुए भी संयम मार्ग में प्रवृत्त नही होते।

२५०

धर्म श्रद्धा से वैपयिक सुखो की आसक्ति छोड़कर यह जीव वैराग्य को प्राप्त कर लेता है।

२५१

उत्तम धर्म को सुन लेने के वाद भी उस पर श्रद्धा होना और भी दुर्लभ है।

तप

२५२

देहदुक्खं महाफलम्

२५३

भवकोड़िय संचियंकम्मं तवसा णिज्जरिज्जइ

२५४

नो पूयणं तवसा आवहेज्जा

२५५

नन्नत्थ निज्जरट्ठयाए तवमहिट्ठेज्जा

२५६

सउणी जह पंसुगुंडिया विहुणिय धंसयइ सियं रयं
एंव दविओवहाणवं कम्मं खवइ तवस्सि माहणे

२५७

तवेसु वा उत्तमं बंभचेरं

२५८

असिधारागमणं चेव दुक्करं चरिउं तवो

तप

२५२

देह का दमन करना तप है, यह महान फलप्रद है ।

२५३

कोटि कोटि भवों के संचित कर्म तपस्या की अग्नि में भस्म हो जाते है ।

२५४

तप के द्वारा पूजा प्रतिष्ठा की अभिलाषा नही करनी चाहिए ।

२५५

केवल कर्म निर्जरा के लिए तपस्या करनी चाहिए । इहलोक परलोक व यश कीर्ति के लिए नहीं ।

२५६

जिस प्रकार शकुनी नाम का पक्षी अपने परो को फडफडा कर उन पर लगी धूल को झाड़ देता हैं उसी प्रकार तपस्या के द्वारा मुमुक्षु अपने कृतकर्मों का बहुत शीघ्र ही अपनयन कर देता है ।

२५७

तपो मे सर्वोत्तम तप है ब्रह्मचर्य ।

२५८

तप का आचरण तलवार की धार पर चलने के समान दुष्कर है ।

२५९

एगमप्पाणं संपेहाए धुणे सरीरगं

२६०

छन्दं निरोहेण उवेइ मोक्खं

२६१

सक्खं खु दीसइ तवो विसेसो
न दीसई जाइ विसेस कोई

२६२

तवो जोइ जीवो जोई ठाणं
जोगा सुया सरीरं कारिसंगं
कम्मेहा संजमजोग सन्ति
होमं हुणामि इसिणंपसत्थं

२६३

कसेहिं अप्पाण जरेहि अप्पाण

२६४

अप्पपिण्डासि पाणासि अप्पंभासेज्ज सुव्वए

२६५

णो पाणभोयणस्स अतिमत्तं
आहारए सया भवई

२५९

आत्मा को शरीर से पृथक् जानकर भोगलिप्त शरीर को तपस्या के द्वारा धुन डालो।

२६०

इच्छा निरोध तप से मोक्ष की प्राप्त होता है।

२६१

तप की विशेषता तो प्रत्यक्ष दिखलाई देती है किन्तु जाति की तो कोई विशेषता नजर नही आती।

२६२

तप ज्योति अर्थात् अग्नि है, जीव ज्योति स्थान है, मन वचन काया के योग आहुति देने की कड़छी है, शरीर अग्नि प्रज्वलित करने का साधन है कर्म जलाए जाने वाला इधन है, संयम योग शाति पाठ है मैं इस प्रकार का यज्ञ करता हूँ जिसे ऋषियों ने श्रेष्ठ बतलाया है।

२६३

तप के द्वारा अपने को कृश करो। तन मन को हल्का करो अपने को जीर्ण करो, भोग वृत्ति को जर्जर करो।

२६४

सुव्रती साधक कम खाए, कम पीए और कम बोले।

२६५

ब्रह्मचारी को कभी भी अधिक मात्रा में भोजन नही करना चाहिए।

२६६

जमे तव नियम संजम लज्झाय झाणाऽवस्सय
मादीएसु जोगेसु जयणा सेत्त जत्ता

२६७

तवेण परिसुज्झई

२६८

तवप्पहाणं चरियं च उत्तमं

२६९

सो तवो दुविहो वुत्तो बाहिरऽब्भन्तरो तहा
बाहिरो छव्विहो वुत्तो एवमब्भंतरोतवो

२७०

तव नारायजुत्तेण भित्तूण कम्म कंचुयं

२७१

वेएज्ज निज्जरा पेही

२७२

पच्चक्खाणेणं आसव दाराइ निरुम्भइ

२७३

अणण्हये तवे चेव

२७४

अप्पादंतो सुही होइ

२६६

तप नियम संयम स्वाध्याय ध्यान आवश्यक आदि योगों में जो यत्ना विवेक प्रवृत्ति है वह मेरी वास्तविक यात्रा जीवन चर्या है।

२६७

साधक तप से शुद्ध हो जाता है।

२६८

तप मूल चारित्र ही सर्वश्रेष्ठ चारित्र है।

२६९

तप दो प्रकार का है वाह्य और आभ्यन्तर। ये दोनों ६, ६ प्रकार का कहा गया है।

२७०

तप रूपी लोह वाण से युक्त धनुष के द्वारा कर्म रूपी कवच को भेद डालें।

२७१

निर्जरा का आकांक्षी सहनशील होवे।

२७२

प्रत्याख्यान से आश्रव के द्वार वध हो जाते हैं।

२७३

तप से पूर्वबद्ध कर्मों का नाश करो।

२७४

आत्मस्थ कषायों का दमन करने वाला ही सुखी होता है।

२७५

तवेणं वोदाणं जणयई

२७६

अणसणभूणोयरिया भिक्खा यरिया रसपरिच्चाओ
कायकिलेसो संलोणया य, बज्झो तवो होइ

२७७

पायच्छित्तं विणओ, वेयावच्च तहेव सज्झाओ
झाणं च विउस्सग्गो एसो अब्भिन्तरो तवो

२७८

आलोयणाए उज्जुभावं जणयइ

२७९

बल थामं च पेहाए सद्धमारोग्गमप्पणो
खेत्तं काल च विन्नाय तहप्पाण निजुंजए

२८०

तवं चरे

२८१

तवसाधुणइपुराण पावगं

२८२

तवोगुण पहाणस्स उज्जुमइ

२८३

समाहिकामे समणे तवस्सी

२७५

तप से व्यवदान-पूर्व कर्मो का क्षय कर आत्मा शुद्धि प्राप्त करता है ।

२७६

अनशन, ऊनोदरी, भिक्षाचरी, रसपरित्याग, कायक्लेश और प्रति संलीनता ये बाह्य तप के ६ भेद है ।

२७७

प्रायश्चित, विनय, वैयावृत्य स्वाध्याय ध्यान और कायोत्सर्ग ये आभ्यन्तर तप के छः भेद है ।

२७८

आलोचना से निष्कपटता के भाव पैदा होते है ।

२७९

अपना बल दृढता श्रद्धा आरोग्य तथा क्षेत्रकाल को देखकर आत्मा को तपश्चर्या में लगाना चाहिए ।

२८०

तप का आचरण करो ।

२८१

तप द्वारा पुराने पाप की निर्जरा होती है ।

२८२

तप रूप प्रधान गुण वाले की मति सरल होती है ।

२८३

जो श्रमण समाधि की कामना करता है वही तपस्वी है ।

२८४

पडिक्कमणेणं वय छिद्दाणि पिहेइ

२८५

तवं कुव्वइ मेहावी

२८६

परक्कमिज्जा तव संजमम्मि

२८७

अकोहणे सच्चर ते तवस्सो

२८४

प्रतिक्रमण से व्रतो के छिद्र ढंक जाते हैं ।

२८५

मेधावी पुरुष तप करता है ।

२८६

तप संयम मे पराक्रम वतलाओ ।

२८७

अक्रोधी, सत्यरत तपस्वी होता है ।

साधना

२८८

झाणजोगं समाहट्टु
कायं विउसेज्ज सव्वसो

२८९

भोगी भोगे परिच्चयमाणे
महाणिज्जरे महापज्जवसाणे भवइ

२९०

जं मे तव नियम संजम सज्झाय झाणाऽवस्सय
मादीएसु जोगेसु जयणा, से त्तं जत्ता

२९१

बाहहिं सागरो चेव तरियव्वो गुणोदही

२९२

खमावणयाएणं पल्हायणभावं जणयइ

२९३

असंजमे नियत्तिं च संजमेय पवत्तणं

साधना

२८८

ध्यान योग का आलम्वन कर देहभाव का सर्वतोभावेन विसर्जन करना चाहिए ।

२८९

भोग समर्थ होते हुए भी जो भोगो का परित्याग करता है वह कर्मो की महान निर्जरा करता है उसे मुक्ति रूप महा फल प्राप्त होता है ।

२९०

तप नियम सयम स्वाध्याय ध्यान आवश्यक आदि योगो में जो यतना विवेक युक्त प्रवृत्ति है वही मेरी वास्तविक यात्रा है ।

२९१

सद्गुणो की साधना का कार्य भुजाओ से सागर तैरने जैसा है ।

२९२

क्षमापना से आत्मा में प्रसन्नता की अनुभूति होती है ।

२९३

असयम से निवृत्ति और संयम मे प्रवृत्ति करनी चाहिए ।

२९४

अहीवेगन्तदिट्ठिए चरित्ते पुत्ता दुच्चरे

२९५

जवा लोहमया चेव चावेयव्वा सुदुक्कर

२९६

अणुवओगो दव्वम्

२९४

सर्प जैसे एकाग्र दृष्टी से चलता है वैसे एकाग्र दृष्टि से चारित्र धर्म का पालन बहुत ही कठिन है।

२९५

जैसे लोह के जवो को चवाना कठिन है वैसे ही संयम साधना का पालन भी कठिन है।

२९६

उपयोग (विवेक) शून्य साधना केवल द्रव्य है, भाव नहीं।

समभाव

२९७

जहा पुण्णस्स कत्थइ तहा तुच्छस्स कत्थइ
जहा तुच्छस्स कत्थइ तहा पुण्णस्सकत्थइ

२९८

उवहेएणं बहिया य लोगं
से सव्वलोगम्मि जे केइ विण्णू

२९९

जीवियं नाभि कंखिज्जा मरणंनोवि पत्थए
दुहओ वि न सज्जेज्जा जीविए मरणे तहा

३००

गंथेहि विवित्तेहि आउकालस्स पारए

३०१

इंदिएहिं गिलायंतो समियं आहरे मुणी
तहा वि से अगरहे अचले जे समाहिए

समभाव

२९७

निस्पृह उपदेशक जिस प्रकार पुण्यवान को उपदेश देता है उसी प्रकार तुच्छ को भी उपदेश देता है और जिस प्रकार तुच्छ को उसी प्रकार पुण्यवान् को भी, अर्थात् दोनों के प्रति समभाव रखता है।

२९८

जो अपने धर्म से विपरीत रहने वाले लोगों के प्रति भी, तटस्थता रखता है, उद्विग्न नही होता है वह समस्त विश्व के विद्वानों मे अग्रणी है।

२९९

साधक न जीने की आकांक्षा करे और न मरने की कामना करे। वह जीवन और मरण में किसी प्रकार की आकांक्षा न रखता हुआ समभाव से रहे।

३००

साधक को अन्दर और बाहर की सभी बन्धन रूप गांठों से मुक्त होकर जीवन यात्रा पूर्ण करनी चाहिए।

३०१

शरीर और इन्द्रियों के क्लान्त होने पर भी मुनि अन्तर्मन में समभाव रखे, इधर उधर गति और हलचल करता हुआ भी, साधक निंद्य नही है यदि वह अन्तरंग मे अविचल है तो।

३०२

समाइयमाहु तस्स ज जो अप्पाणं भए ण दंसए

३०३

सव्वंजगं तू समयाणु पेही
पियमप्पियं कस्स वि नो करेज्जा

३०४

आयाणे अज्जो सामाइए
आयाणे अज्जो सामाइयस्स अट्ठे

३०५

देहदुक्खं महाफलम्

३०६

थोवं लद्धुं न खिसए

३०७

अलद्धुयं नो परिदेवइज्जा
लद्धुं न विकत्थइ स पुज्जो

३०८

वियाणिया अप्प गमप्पएणं
जो रागदोसेहिं समो स पुज्ज

३०२

समभाव उसी को रह सकता है जो अपने को हर किसी भय से मुक्त रखता है।

३०३

समग्र विश्व को जो समभाव से देखता है वह न किसी का प्रिय करता है और न अप्रिय अर्थात् समदर्शी अपने पराए की भेद वुद्धि से परे होता है।

३०४

हे आर्य ! आत्मा ही समत्व भाव है, और आत्मा ही सामायिक का अर्थ है।

३०५

शारीरिक कष्टों को समभाव पूर्वक सहने से, महावल की प्राप्ति होती है।

३०६

मनचाहा लाभ न होने पर झुजलाए नही

३०७

जो लाभ न होने पर खिन्न नहीं होता है, और लाभ होने पर अपनी वडाई नही हाँकता है, वही पूज्य है।

३०८

जो अपने को अपने से जानकर रागद्वेष के प्रसगो पर सम रहता है, वही साधक पूज्य है।

३०९

लाभालाभे सुहे दुक्खे जीविए मरणे तहा
समो निंदा पसंसासु समो माणा वमाणओ

३१०

लाभुत्ति न मज्जिज्जा अलाभुत्ति न सोइज्जा

३११

नो उच्चावयं मणं नियंछिज्जा

३१२

समयं सया चरे

३१३

समता सव्वत्थ सुव्वए

३१४

पियमप्पिय सव्वं तितिक्खएज्जा

३१५

सयणे अजणे अ समो समोअ माणावमाणेसु

३१६

समे यजे सव्वपाणभूयेसु से हु समणे

३०९

जो लाभ, अलाभ सुख, दुःख ,जीवन, मरण, निन्दा, प्रशंसा, और मान अपमान में समभाव रखता है वही वस्तुतः मुनि है ।

३१०

साधक मिलने पर गर्व न करे और न मिलने पर शोक न करे ।

३११

सकट की घड़ियों में भी मन को ऊंचा नीचा अर्थात् डावाड़ोल नही होने देना चाहिए ।

३१२

साधक को सदा समता का आचरण करना चाहिए ।

३१३

सुव्रती को सर्वत्र समताभाव रखना चाहिए ।

३१४

प्रिय हो, अप्रिय हो, सबको समभाव से सहन करना चाहिए ।

३१५

स्वजन तथा परजन मे, मान एवं अपमान में जो सदा समभाव रखता है, वह श्रमण होता है ।

३१६

समस्त प्राणियो के प्रति जो समभाव रखता है, वही सच्चा साधु है ।

वीतराग

३१७

विमुत्ता हु ते जणा जे जणा पारगामिणो

३१८

लोभमलोभेण दुगछमाणे
लद्धे कामे नाभि गाहई

३१९

अणोहंतराए, ए नो य ओहं, तरित्तए अतीरंगमा एए
नो य तीरं गभित्तए अपारंगमा, ए ए नोय पारं गमित्तए

३२०

कामादुरतिक्कामा

३२१

अणोमदंसो निसण्णो पावेहि कम्मेहि

३२२

किमत्थि उवाही पासगस्स न विज्जइ ? नत्थि

वीतराग

३१७

जो साधक कामनाओ को पार कर गए है, वस्तुतः वे ही मुक्त पुरुष हैं ।

३१८

जो लोभ के प्रति अलोभ वृत्ति रखता है, वह और तो क्या काम भोगो के प्राप्त होने पर भी आकृष्ट नहीं होता ।

३१९

जो वासना के प्रवाह को नही तैर पाए है वे संसार के प्रवाह को नही तैर सकते । जो इन्द्रिय जन्य काम भोगों को पार कर तट पर नही पहुँचे है, वे संसार सागर के तट पर नही पहुँच सकते । जो रागद्वेष को पार नही कर पाए है, वे संसार सागर से पार नही हो सकते ।

३२०

कामनाओ का पार पाना, बहुत कठिन है ।

३२१

उच्च दृष्टि वाला साधक ही पाप कर्मों से दूर रहता है ।

३२२

वीतराग सत्यद्रष्टा को कोई उपाधि होती है या नही ? नही ।

३२३

न लोगस्सेसणंचरे जस्स नत्थि इमा जाई
अण्णा तस्स कओ सिया ?

३२४

न सक्का न सोउं सद्दा सोतविसयमागया
रागदोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए

३२५

नो सक्का रुवमद्दटठं चक्खू विसयमागयं
राग दोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए

३२६

न सक्का गंधमग्घाऊँ नासाविषयमागयं
रागदोसा उ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए

३२७

न सक्का रस मस्साऊं जीहा विषयमागयं
रागदोसाउ जे तत्थ ते भिक्खू परिवज्जए

३२८

न सक्का फासमवेएऊँ फासविसय भागयं
राग दोसा उ जे तत्थ ते भीक्खू परिवज्जए

३२३

लोकैषणा से मुक्त रहना चाहिए। जिसको यह लोकैषणा नही है, उससे अन्य पाप प्रवृत्तियाँ कैसे हो सकती है ?

३२४

यह शक्य नही है कि कानो मे पड़ने वाले अच्छे या बुरे शब्द सुने न जाएँ। अतः शब्दो का नही, पर शब्दों के प्रति जगने वाले राग द्वेप का साधु को त्याग करना चाहिए।

३२५

यह शक्य नही है कि आँखो के सामने आने वाला अच्छा या बुरा रूप देखा न जाए। अत. रूप का यही पर होने वाले राग द्वेप का साधु को त्याग करना चाहिए।

३२६

यह शक्य नही है कि नाक के समक्ष आया हुआ गन्ध या दुर्गन्ध, सूंघने मे न आए। अतः गंध का नही किन्तु गंध के प्रति जगने वाले राग द्वेप का त्याग करना चाहिए।

३२७

यह शक्य नही है कि जीभ पर आया हुआ अच्छा या बुरा रस चखने मे न आए। अत रस का नही पर रस से होने वाले राग द्वेष का साधु को त्याग करना चहिए।

३२८

यह शक्य नही है कि शरीर के स्पर्श होने वाले अच्छे या बुरे स्पर्शों की अनुभूति न हो। अतः स्पर्श का नही पर स्पर्श से जगने वाले राग द्वेप का साधु को त्याग करना चाहिए।

३२९

समाहियस्स अग्गिसिहा व तेयसा
तवो य पन्ना य जस्सोय वड़ढ़इ

३३०

अणुक्कमे अप्पलीणे मज्झेण मुणिजावए

३३१

लद्धे कामे न पत्थेज्जा

३३२

वीयरागयाएणं नेहाणुबधणणि,
तण्हाणुबंधणणिय वोच्छिंदई ।

३३३

समोय जो तेसु स वीयरागो

३३४

एविंदियत्थाम य मणस्स अत्थ
दुक्खस्स हेउं मणुयस्स रागिणो
न चेव थोवं पि कयाइ दुःक्खं
न वीयरागस्स करेति किंचि

३३५

अणि हे से पुछे अहियासए

३२९

अग्नि शिखा के समान प्रदीप्त एवं प्रकाशमान रहने वाले अन्तर्लीन साधक के तप प्रज्ञा और यश निरन्तर, बढ़ते रहते हैं।

३३०

अहं रहित एवं अनासक्त भाव से मुनि को राग द्वेष के प्रसंगों से दूर रहना चाहिए।

३३१

प्राप्त होने पर भी काम भोगों को स्वीकार नही करना चाहिए।

३३२

वीतराग भाव से राग और तृष्णा के बंधन कट जाते हैं।

३३३

जो भले और बुरे शब्दादि के विषयों में समान रहता है वह वीतराग है।

३३४

रागात्मा को ही मन एवं इन्द्रियों के विषय दुःख के हेतु होते हैं। वीतराग को तो वे किञ्चित् मात्र भी दुःखी नही बना सकते।

३३५

आत्मवेत्ता साधक को निःस्पृह होकर आने वाले कष्टों को सहन करना चाहिए।

३३६

वीयरागभाव पडिवन्ने वियणं
जीवे सम सुह दुक्खे भवइ

३३७

नलिप्पई भव मज्झे वि संतो
जलेण वा पोक्खरिणी पलासं

३३८

से हु चक्खू मणुस्साणं जे कंखाए य अन्तए

३३९

कामी कामे न कामए, लद्धे वावि अलद्धं कण्हुई ।

३३६

वीतराग भाव को प्राप्त हुआ जीव सुख दुःख में एकसा रहता है।

३३७

जो आत्मा विषयों से दूर है, वह संसार में रहता हुआ भी जल में कमलिनी पत्र के समान अलिप्त रहता है।

३३८

जिस साधक ने आसक्ति भाव को नष्ट कर दिया है, वह मनुष्यो के लिए मार्ग-दर्शक चक्षु रूप है।

३३९

साधक सुखाभिलाषी बन काम भोगो की कामना न करे और प्राप्त भोगो के प्रति भी निस्पृह भाव रखे।

सरलता

३४०

कड़ कड़ेत्ति भासेज्जा अकड़ं नो कड़ेत्तिय

३४१

आहच्च चंड़ालियं कट्टु न निण्हविज्ज कयाइवि

३४२

सोहि उज्जूय भूयस्स धम्मो सुद्धस्स चिट्ठइ

३४३

एगमवि मायी मायं कटटु आलोएज्जा
जाव पड़िवज्जेजा अत्थि तस्स आराहणा

३४४

अविसवायणा सं पन्नायाए णं जीवे
धम्मस्स आराहए भवइ

३४५

करण सच्चे वट्ठमाणे जीवे जहावाइ तहाकारी यावि,भवई

सरलता

३४०

विना किसी छिपाव या दुराव के किए हुए कर्म को किया हुआ कहिए तथा नही किए हुए कर्म को न किया हुआ कहिए।

३४१

यदि साधक कभी कोई चाण्डालिक दुष्कर्म करले तो फिर कभी उसे छिपाने का प्रयत्न न करे।

३४२

ऋजु अर्थात् सरल आत्मा की विशुद्धि होती है, और विशुद्ध आत्मा में ही धर्म ठहरता है।

३४३

जो प्रमादवश हुए कपटाचरण के प्रति पश्चाताप करके सरल हृदय हो जाता है, वह धर्म का आराधक है।

३४४

दम्भरहित अविसंवादी आत्मा ही धर्म का सच्चा आराधक होता है।

३४५

करणसत्य-व्यवहार मे स्पष्ट तथा सच्चा रहने वाला आत्मा धर्म को प्राप्त करता है।

संयम

३४६

जं मयं सव्व साहूणं तं मयं सल्लगत्तणं
साहइत्ताण तं तिण्णा देवा वा अभर्विसुते

३४७

बालुया कवले चेव निरस्साए उ संजमे

३४८

संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ

३४९

जो जीवे विन जाणइ अजीवे विन जाणइ
जीताऽजीवे अयाणंतो कहं सो नाहीइ संजमं

३५०

जो जीवे वि वियाणाइ अजीवे वि वियाणइ
जीवाऽजीवे वियाणंतो सो हु नाहीइ सजमं

३५१

असंजमे नियर्त्ति च संजमेय पव

संयम

३४६

सभी साधुओं द्वारा मान्य ऐसा जो संयम धर्म है, वह पाप का नाश करने वाला है। इसी संयम धर्म की उत्कृष्ट आराधना कर अनेक भव्य जीव संसार सागर से पार हुए है और अनेक ने देवयोनि प्राप्त की है।

३४७

संयम वालू-रेती के कौर की तरह नीरस है।

३४८

संयम से जीव आश्रव-पाप का निरोध करता है।

३४९

जो जीवो को नही जानता है, वह अजीवो को भी नहीं जानता जीव और अजीव दोनों को नही जानने वाला संयम को कैसे जान सकता है।

३५०

जो जीवो और अजीवों को भी जानता है, वह जीव और अजीव दोनो को जानने वाला संयम को भी भली-भाँति से जान लेता है।

३५१

असंयम से निवृत्ति और सयम में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

संयम

३४६

जं मयं सव्व साहूणं त मयं सल्लगत्तणं
साहइत्ताण तं तिण्णा देवा वा अभविंसुते

३४७

बालुया कवले चेव निरस्साए उ संजमे

३४८

संजमेणं अणण्हयत्तं जणयइ

३४९

जो जीवे विन जाणइ अजीवे विन जाणइ
जीताऽजीवे अयाणंतो कहं सो नाहीइ संजमं

३५०

जो जीवे वि वियाणाइ अजीवे वि वियाणइ
जीवाऽजीवे वियाणंतो सो हु नाहीइ संजमं

३५१

असंजमे नियत्तिं च संजमेय पवत्तणं

संयम

३४६

सभी साधुओं द्वारा मान्य ऐसा जो संयम धर्म है, वह पाप का नाश करने वाला है। इसी संयम धर्म की उत्कृष्ट आराधना कर अनेक भव्य जीव संसार सागर से पार हुए है और अनेक ने देवयोनि प्राप्त की है।

३४७

संयम बालू-रेती के कौर की तरह नीरस है।

३४८

संयम से जीव आश्रव-पाप का निरोध करता है।

३४९

जो जीवो को नहीं जानता है, वह अजीवो को भी नही जानता जीव और अजीव दोनों को नही जानने वाला संयम को कैसे जान सकता है।

३५०

जो जीवो और अजीवों को भी जानता है, वह जीव और अजीव दोनो को जानने वाला संयम को भी भली-भांति से जान लेता है।

३५१

असयम से निवृत्ति और सयम में प्रवृत्ति करनी चाहिए।

३५९

भोगी भोगे परिच्चय माणे महाणिज्जरे
महापज्जवसाणे भवइ

३६०

अच्छंदा जेन भुजति नसे चाइत्ति वुच्चई

३६१

जे य कंते पिएभोए लद्धे विपट्ठि कुव्वई
साहीणे चयई भोए से हु चाइत्ति वुच्चए

३५९

भोग समर्थ होते हुए भी जो भोगो का परित्याग करता है, वह कर्मो की महान निर्जरा करता है, उसे मुक्ति रूप महाफल प्राप्त होता है।

३६०

जो पराधीनता के कारण विषयो का उपभोग नही कर पाते, उन्हे त्यागी नही कहा जा सकता।

३६१

जो मनोहर और प्रिय भोगो के उपलब्ध होने पर भी, स्वाधीनता पूर्वक उन्हे पीठ दिखा देता है अर्थात् त्याग देता है, वही त्यागी कहलाता है।

सद्गुण

३६२

गुणसट्ठियस्स वयणं घयपरिसित्तुव पावओभाइं
गुणहीणस्स न सोहइ नेहविहूणा जह पइवो

३६३

अंबत्तणेण जीहाइ कूइया होइ खीरमुदगम्मि
हंसो मोत्तूण जलं आपियइ पयं तह सुसीसो

३६४

चउहिं ठाणेहि संते गुणे नासेज्जा कोहेणं पड़िनिवेसेणं
अकयण्णुयाए मिच्छत्ताभिणिवेसेणं

३६५

गुणेहिं साहू अगुणेहिंऽसाहू
गिण्हाहि साहू गुणमुञ्चऽसाहू

३६६

कखे गुणे जाव सरीर भेऊ

३६७

निमम्मे निरहंकारे

सद्गुण

३६२

गुणवान व्यक्ति का वचन घृतसिंचित अग्नि की तरह तेजस्वी होता है जबकि गुणहीन व्यक्ति का वचन स्नेहरहित (तैल-शून्य) दीपक की तरह तेज और प्रकाश से शून्य होता है।

३६३

हंस जिस प्रकार अपनी जिह्वा की अम्लता शक्ति के द्वारा जल मिश्रित दूध मे से जल को छोड़कर दूध को ग्रहण कर लेता है उसी प्रकार सुशिष्य दुर्गुणों को छोड़कर सद्गुणों को ग्रहण करता है।

३६४

क्रोध, ईर्ष्या-डाह, अकृतज्ञता और मिथ्या आग्रह इन चार दुर्गुणों के कारण मनुष्य के विद्यमान गुण भी नष्ट हो जाते हैं।

३६५

सद्गुण से साधु कहलाता है, दुर्गुण से असाधु। अतएव दुर्गुणों को त्याग कर सद्गुणो को ग्रहण करो।

३६६

जब तक जीवन है तब तक सद्गुणों की आराधना करते रहना चाहिए।

३६७

ममता रहित और अहंकार रहित बनो

३६८

अकोहणे सच्चरए सिक्खा सीले

३६९

अप्पमत्तो परिव्वए

३७०

संगाम सीसे व परं दमेज्जा

३७१

मेहावी जाणिज्ज धम्मं

३७२

सिक्खं सिक्खेज्ज पंडिए

३७३

न कंखे पुव्व साथवं

३७४

वायणाए निज्जरं जणयइ

३६८

अक्रोधी सत्यरत तपस्वी होता है ।

३६९

अप्रमादी होता हुआ विचरे ।

३७०

जैसे संग्राम के अग्रभाग पर शत्रु का दमन किया जाता है वैसे ही इन्द्रियो के विषयों का दमन करो ।

३७१

मेधावी धर्म को जाने ।

३७२

पण्डित पुरुष व्याकरणादि का अध्ययन करे ।

३७३

पूर्व काल मे प्राप्त प्रशंसा आदि की इच्छा नही करे ।

३७४

वाचना से निर्जरा होती है ।

स्वाध्याय

३७५

सज्झाए वा निउत्तेण सव्व दुक्खविमोखणे

३७६

सज्झायं च तवो कुज्जा सव्व भावविभावणं

३७७

सज्झाएणं णाणावरणिज्झं कम्मं खवेई

३७८

नवि अत्थि न वि आ होही सज्झायसमं तवोकम्मं

स्वाध्याय

३७५

स्वाध्याय करते रहने से समस्त दुःखों से मुक्ति मिल जाती है।

३७६

स्वाध्याय रूपी तप सभी भावों का प्रकाशक है।

३७७

स्वाध्याय से ज्ञानावरणीय कर्म का क्षय होता है।

३७८

स्वाध्याय के समान दूसरा तप न कभी हो सका, न वर्तमान में कहीं और न भविष्य में कभी होगा।

क्रोध

३७९

पव्वयराइसमाणं कोहं अणुपविट्ठे जीवे
कालं करेइ णेरइएसु उववज्जति

३८०

कुद्धो सच्चं सीलं विषयं हणेज्ज

३८१

जे य चंडे मिए थद्धे, दुव्वाई नियड़ी सढे
वुज्झइ से आबिणो यप्पा कड्ढं सोयगयं जहा

३८२

अप्पाणंपि न कोवए

३८३

कोह विजयेणं खंति जणयई

३८४

कसाया अग्गिणो वुत्ता

३८५

अहेवयइ कोहेणं

क्रोध

३७९

पर्वत की दरार के समान जीवन मे कभी नही मिटने वाला उग्र क्रोध आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है।

३८०

क्रोध मे अंधा हुआ व्यक्ति सत्य, शील और विनय का नाश कर डालता है।

३८१

जो मनुष्य क्रोधी अविवेकी अभिमानी दुर्वादी कपटी और धूर्त है, वह संसार के प्रवाह मे वैसे ही बह जाता है जैसे जल के प्रवाह मे काष्ठ।

३८२

अपने आप पर भी कभी क्रोध न करो।

३८३

क्रोध को जीत लेने से क्षमाभाव जागृत होता है।

३८४

कषाय को अग्नि कहा है।

३८५

क्रोध से नीची गति को जाता है।

३८६

कोहो पीइं पणासेइ

३८७

उवसमेण हणे कोहं

३८८

विगिंच कोहं अविकंपमाणे

३८९

इमं णिरुद्धाउयं संपेहाए
दुक्खं य जाण अदु आगमेस्स
पुढो फासाइं या फासे
लोयं य पास विफदमाणं

३९०

चउहिं ठाणेहिं कोहुप्पत्ति सिया
तं जहा—खेत्तं पडुच्च
वत्थुं पडुच्च सरीरं पडुच्च
उवहिं पडुच्च

३९१

चउ पइट्ठिए कोहे पण्णत्ते
तं जहा आयपइट्ठिए
परपइट्ठिए तदुभयपइट्ठिए
अप्पइट्ठिए ।

३८६

क्रोध प्रीति का नाश करता है।

३८७

शान्ति से क्रोध को जीतो।

३८८

[illegible] रहित होकर क्रोधादि कषाय को नष्ट कर [illegible] है।

३८९

क्रोध मनुष्य के [illegible] को नष्ट करता है तथा क्रोध से मानसिक [illegible] कोई मनुष्य [illegible] को बांधकर नरक में [illegible] प्रकार के दुःखों को भोगता है यह [illegible] चाहिए।

३९०

क्रोध [illegible] हैं—१. क्षेत्र नरकादि आश्रित २. [illegible] अचित्त मिश्र वस्तु आश्रित ३. [illegible] ४. उपधि उपकरण आश्रित।

३९१

[illegible]—१. आत्म प्रतिष्ठित-अपनी भूल पर होने [illegible] दूसरे के निमित्त से होने वाला [illegible] दोनों के निमित्त से होने वाला [illegible] बिना उत्पन्न होने वाला।

३६२

जे कोह दंसी से माणदेसी

३६३

णो कुज्झे नो माणे

३६४

कोहं ण पत्थए

३९२

जिसके हृदय मे क्रोध है उसके हृदय मे मान भी अवश्य है।

३९३

क्रोध न करे और मान न करे।

३९४

क्रोध की इच्छा मत करो।

मान

३९५

पन्नामयं चेव तवोमयं च
निन्नामए गोयमयं च भिक्खू
आजीवगं चेव चउत्थमाहु
से पण्डिए उत्तमपोग्गले से

३९६

उन्न यमाणे य नरे महामोहे पमुज्झई

३९७

बुद्धामो त्ति य मन्नंता, अंतए ते समाहिए

३९८

जे माणदंसी से मायादंसी

३९९

माणो विणय नासणो

४००

माणं मद्दवया जिणे

मान

३९५

प्रज्ञा मद, तप मद गोत्र मद और आजीविका मद, इन चार प्रकार के मदों को नहीं करने वाला निस्पृह भिक्षु सच्चा पण्डित और पवित्रात्मा होता है।

३९६

अहंकार करता हुआ मनुष्य महामोह से विवेक शून्य होता है।

३९७

अज्ञान वश अपने आपको ज्ञानी समझने वाला समाधि से बहुत दूर है।

३९८

जो मान वाला है उसके हृदय में माया भी निवास करती है।

३९९

मान विनय गुण का नाश करता है।

४००

मान को नम्रता से जीते।

४०१

न तस्स जाई वा कुलं व ताणं
नण्णत्थ विज्जाचरणं सुचिण्णं

४०२

अत्ताणं न समुक्कस्स

४०३

बालजणो पगब्भइ

४०४

अन्नं जणंपस्सति बिंबभूं

४०५

अन्न जण खिंसइ बालपन्ने

४०६

सेल थंभसमाणं माणं अणुपविट्ठे जीवे
कालं करेइ णोरइएसु उववज्जति

४०७

माण विजए णं मद्दवं जणयई

४०८

सुअलाभे न मज्जिज्जा

४०९

णो माणे

४१०

माणं ण पत्थए

४०१

गोत्राभिमानी को उसकी जाति व कुल शरणभूत नही हो सकते। मात्र ज्ञान और धर्म के सिवाय अन्य कोई भी रक्षा नही कर सकते।

४०२

आत्मा के लिए समुत्कर्ष शील (अहंकारी) न हो।

४०३

अभिमान करना अज्ञानी का लक्षण है।

४०४

अभिमानी अपने अहंकार से चूर होकर दूसरो को सदा परछाई के समान तुच्छ मानता है।

४०५

जो अपनी बुद्धि के अहंकार में दूसरो की अवज्ञा करता है वह मंद बुद्धि है

४०६

पत्थर के खम्भे के समान जीवन मे कभी नही झुकने वाला अहंकार आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है।

४०७

अभिमान को जीत लेने से नम्रता जागृत होती है।

४०८

ज्ञान प्राप्त होने पर मान न करें।

४०९

मान न करे।

४१०

मान की इच्छा मत करो।

माया

४११

माई पमाई पुण एइ गब्भं

४१२

सुहमे सले दुरुद्धरे

४१३

वंसीमूलके तणसमाणं माय अणुपविट्ठे
जीवे कालं करेइ णेरइयेसु उववज्जति

४१४

मायी विउव्वइ नो अमायी विउव्वइ

४१५

मायाविजएणं अज्जवं जणयइ

४१६

जे माणदंसी से मायादंसी

४१७

माया मज्जव भावेण

माया

४११

मायावी और प्रमादी बार बार गर्भ मे अवतरित होता है, जन्म मरण करता है ।

४१२

मन मे रहे हुए विकारो के सूक्ष्म शल्य का निकालना बहुत कठिन हो जाता है ।

४१३

बांस की जड के समान गांठदार माया आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है ।

४१४

जिनके अन्दर मे माया का अश है वही नाना रूपो का प्रदर्शन करता है, वैसा अमायी नही करता है ।

४१५

माया को जीत लेने से सरल भाव प्राप्त होता है ।

४१६

जो मान करने वाले है, वे माया करने वाले भी है ।

४१७

सरलता से माया-कपट को जीते ।

४१८

माई मिच्छादिट्ठि अमाई सम्मदिट्ठी

४१९

माया मित्ताणि नासेइ

४२०

धम्मविसए वि सुहमा माया होइ अणत्थाय

४२१

मायामोसं वड्ढई लोभदोसा
तत्थाऽवि दुक्खान विमुच्चई से

४२२

मायं च वज्जए सया

४२३

माया गई पडिग्घाओ

४२४

माया मोसं विवज्जए

४१८

मायावी जीव मिथ्यादृष्टि होता है, अमायावी सम्यग्दृष्टि

४१९

माया मित्रता का नाश करती है ।

४२०

धर्म के विषय मे की हुयी सूक्ष्म माया भी अनर्थ का कारण बनती है ।

४२१

लाभ के दोष से उसका कपट और झूठ बढ़ता है परन्तु कपट और झूठ का प्रयोग करने पर भी वह दुःख से मुक्त नहीं होता ।

४२२

सदा के लिए माया को छोड दो ।

४२३

माया उच्च गति का प्रतिघात करने वाली है ।

४२४

माया मृषावाद को छोड दो ।

लोभ

४२५

लोभो सव्वविणासणो

४२६

इच्छालोभिते मुत्तिमग्गस्स पलिमथू

४२७

लोभं संतोसओ जिणे

४२८

करेइ लोहं वेरं वड्ढइ अप्पणो

४२९

लोभाओ दुहओ भय

४३०

पुढवी साली जवा चेव हिरण्णं पसुभिस्सह
पडिपुण्णं नालमेगस्स इइ विज्जा तव चरे

४३१

कसिणं पि जो इम लोयं पडिपुण्णं दलेज इक्कस्स
तणापि से न संतुस्से इइ दुप्पूरए इमे आया

लोभ

४२५

लोभ सभी सद्गुणों का नाश कर देता है।

४२६

लोभ मुक्ति पथ का अवरोधक है।

४२७

लोभ को सन्तोष से जीतना चाहिए।

४२८

जो व्यक्ति लोभ करता है वह अपनी ओर से चारों ओर वैर की अभिवृद्धि करता है।

४२९

लोभ से दोनो लोक मे भय रहा हुआ है।

४३०

चावल और जौ आदि धान्यों तथा सुवर्ण और पशुओं से परिपूर्ण यह समूची पृथ्वी भी लोभी को तृप्त नही कर सकती यह जानकर संयम मे रत होना चाहिए।

४३१

हेम व कुप्य पदार्थों से परिपूर्ण सारा विश्व भी किसी एक मनुष्य को दे दिया जाय तो भी वह सन्तुष्ट न होगा। लोभी आत्मा की तृष्णा इस प्रकार शान्त होनी अत्यन्त कठिन है।

४३२

सुवण्णरूप्पस्स उ पव्वया भवे
सिया हु केलाससमा असंखया
नरस्स लुद्धस्स न तेहि किंचि
इच्छा हु आगाससमा अणन्तिया

४३६

जहा लाहो तहा लोहो लाहा लोहो पवड्ढई
दो मास कयं कज्ज कोडोए विन निट्ठियं

४३४

भवतण्हा लया कुत्ता भोमा भोम फलोदया
तमुच्छित्तु जहानायं विहरामि महामुणी

४३५

तण्हाहया जस्स न होई लोहो

४३६

लोभपत्ते लोभी समावइज्जा मोसं वयणाए

४३७

मम्माइ लुप्पइ बाले

४३८

सीहं जहा व कुणिमेणं
निब्भयमेग चरेति पासेणं

४३२

कैलाश के समान चादी और सोने के कैलाश के समान विशाल असख्य पर्वत भी यदि पास मे हो तो भी तृष्णाशील व्यक्ति की तृप्ति के लिए वे नही के बराबर हैं कारण आकाश के समान तृष्णा अनन्त है।

४३३

ज्यों ज्यों लोभ होता है त्यो त्यों लोभ भी बढता जाता है देखिए पहले केवल दो मासे स्वर्ण की इच्छा थी बाद में वह तृष्णा करोडो पर भी पूरी न हो सकी।

४३४

हे महामुनि ! ससार-तृष्णा एक भयकर लता है जिसके फल भी बडे भयकर है। मैं उस लता का उच्छेद करके सुख पूर्वक विचरण करता हूँ।

४३५

जिसको लोभ नही, उसकी तृष्णा नष्ट हो गयी।

४३६

लोभ का प्रसग आने पर व्यक्ति असत्य का आश्रय ले लेता है।

४३७

यह मेरा है, यह मेरा है, इस ममत्व बुद्धि के कारण, बाल जीव विलुप्त होते हैं।

४३८

जैसे कांटा निगलने वाला फिर भी मांस के लोभ से जाल में फँस जाता है, वैसे ही मनुष्य भी।

४३९

अन्ने हरंति तं वित्तं
कम्मी कम्मे हो किच्चती

४४०

किमिराग रत्त वत्थ समाणज्ञोभं अणुपविट्ठे
जीवे कालं करे इ नेरइएसु उववज्जति

४४१

लुद्धो लोलो भणेज्ज अलियं

४४२

लोभ विजएण संतोसं जणयइ

४३९

यथावसर सचित धन को तो दूसरे उड़ा लेते हैं और संग्रही को अपने पाप कर्मों का दुष्फल फल भोगना पड़ता है।

४४०

कृमिराग अर्थात् मजीठ के रंग समान जीवन में कभी नही छूटने वाला लोभ आत्मा को नरक गति की ओर ले जाता है।

४४१

मनुष्य लोभग्रस्त होकर झूठ बोलता है।

४४२

लोभ को जीत लेने से सतोष की प्राप्ति होती है।

विनय

४४३

थंभा व कोहा व मयप्पमाया,
गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो,
फलं व कोअस्स वहाय होइ॥

४४४

सिया हु से पाअय नो डहिज्जा
आसीविसो वा कुविओ न भक्खे
सिया विसं हालहलं न मारे
न यावि मुक्खो गुरुहीलणाए

४४५

विणयं पि जो उवाएण, चोइओ कुप्पई नरो।
दिव्वं सो सिरिमिज्जंति दण्डेण पडिसेहए॥

४४६

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स
खधाऊपच्छा समुवेन्ति साहा
साहाप्पसाहा विरुहन्ति पत्ता
तओ सि पुप्फ च फलं रसोय

विनय

४४३

जो मुनि अभिमान, क्रोध, माया या प्रमादवश गुरु के निकट रहकर विनय नही सीखता, उनके प्रति विनय का व्यवहार नही करता उसका यह अविनयी भाव वास के फल की तरह स्वय के लिए विनाश का कारण वनता है।

४४४

सम्भव है कदाचित अग्नि न जलावे, सम्भव है कुपित विषधर न डसे और यह भी सम्भव है कि हलाहल विष भी मृत्यु का कारण न वने किन्तु गुरु की अवहेलना करने वाले साधक के लिए मोक्ष सम्भव नही है।

४४५

कोई महापुरुष सुन्दर शिक्षा द्वारा किसी को विनय मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे तब वह कुपित होता है। ऐसी स्थिति मे वह स्वय अपने द्वार पर आई हुयी दिव्य लक्ष्मी को डण्डामार कर भगा देता है।

४४६

वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है स्कन्ध के पश्चात् शाखाएं और शाखाओ से प्रशाखाएं निकलती है उसके पश्चात् पत्र पुष्प फल और रस उत्पन्न होता है।

विनय

४४३

थंभा व कोहा व मयप्पमाया,
गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे ।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो,
फलं व कोअस्स वहाय होइ ॥

४४४

सिया हु से पात्रय नो डहिज्जा
आसीविसो वा कुविओ न भक्खे
सिया विसं हालहलं न मारे
न यावि मुक्खो गुरुहीलणाए

४४५

विणयं पि जो उवाएण, चोइओ कुप्पई नरो ।
दिव्वं सो सिरिमिज्जंति दण्डेण पडिसेहए ॥

४४६

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स
खंधाऊपच्छा समुवेन्ति साहा
साहाप्पसाहा विरुहन्ति पत्ता
तओ सि पुप्फ च फलं रसोय

विनय

४४३

जो मुनि अभिमान, क्रोध, माया या प्रमादवश गुरु के निकट रहकर विनय नहीं सीखता, उनके प्रति विनय का व्यवहार नहीं करता उसका यह अविनयी भाव बांस के फल की तरह स्वयं के लिए विनाश का कारण बनता है।

४४४

सम्भव है कदाचित् अग्नि न जलावे, सम्भव है कुपित विषधर न डसे और यह भी सम्भव है कि हलाहल विष भी मृत्यु का कारण न बने किन्तु गुरु की अवहेलना करने वाले साधक के लिए मोक्ष सम्भव नहीं है।

४४५

कोई महापुरुष सुन्दर शिक्षा द्वारा किसी को विनय मार्ग पर चलने के लिए प्रेरित करे तब वह कुपित होता है। ऐसी स्थिति में वह [illegible] अपने द्वार पर आई हुई दिव्य लक्ष्मी को दण्डप्रहार कर भगा देता है।

४४६

वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है, स्कन्ध के पश्चात् शाखाएं और शाखाओं से प्रशाखाएं निकलती। उसके पश्चात् पुष्प, फल और रस उत्पन्न होता है।

विनय

४४३

थंभा व कोहा व मयप्पमाया,
गुरुस्सगासे विणयं न सिक्खे ।
सो चेव उ तस्स अभूइभावो,
फलं व कोअस्स वहाय होइ ॥

४४४

सिया हु से पावय नो डहिज्जा
आसीविसो वा कुविओ न भक्खे
सिया विसं हालहलं न मारे
न यावि मुक्खो गुरुहीलणाए

४४५

विणयं पि जो उवाएण, चोइओ कुप्पई नरो ।
दिव्वं सो सिरिमिज्जंति दण्डेण पडिसेहए ॥

४४६

मूलाओ खंधप्पभवो दुमस्स
खधाऊपच्छा समुवेन्ति साहा
साहाप्पसाहा विरुहन्ति पत्ता
तओ सि पुप्फ च फलं रसोय

विनय

४४३

जो मुनि अभिमान, क्रोध, माया या प्रमादवश गुरु के निकट रहकर विनय नहीं सीखता, उनके प्रति विनय का व्यवहार नहीं करता उसका यह अविनयी भाव वास के फल की तरह स्वयं के लिए विनाश का कारण बनता है।

४४४

सम्भव है कदाचित् अग्नि न जलावे, सम्भव है कुपित विषधर न डसे और यह भी सम्भव है कि हलाहल विष भी मृत्यु का कारण न बने किन्तु गुरु की अवहेलना करने वाले साधक के लिए मोक्ष सम्भव नहीं है।

४४५

कोई महापुरुष सुन्दर शिक्षा द्वारा किसी को विनय मार्ग पर लाने के लिए प्रेरित करे तब वह कुपित होता है। ऐसी स्थिति में वह व्यक्ति अपने द्वार पर आई हुयी दिव्य लक्ष्मी को प्रताड़ित कर भगा रहा है।

४४६

वृक्ष के मूल से स्कन्ध उत्पन्न होता है स्कन्ध के पश्चात् शाखाएं और शाखाओं से प्रशाखाएं निकलती है उसके पश्चात् फूल फल और रस उत्पन्न होता है।

४४७

एवं धम्मस्स विणओ मूलं परमो से मोक्खो
जेण कित्तिं सुयं सिग्घ, निस्सेसं चाभिगच्छई ।

४४८

जस्संतिए धम्म पयाइं सिक्खे
तस्संतिए वेणइयं पउंजे

४४९

आयरियं कुवियं नच्चा पत्तिएण पसायए ।
विज्झवेज्झ पजली उड़ो वएज्ज न पुणुत्ति य ॥

४५०

विणओ वि तवो तवो पि धम्मो

४५१

वेयावच्चेणं तित्थयरनाम गोयं
कम्म निबंधेइ

४५२

गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्च करणयाए
अब्भुट्ठेयव्वं भवइ ।

४५३

कलह डम्बर वज्जिए····· सुविणीएत्तिवुच्चई

४४७

इसी प्रकार धर्म रूपी वृक्ष का मूल विनय है और उसका अन्तिम फल मोक्ष है। विनय से मनुष्य को कीर्ति प्रशंसा और श्रुतज्ञान आदि समस्त इष्ट तत्त्वों की प्राप्ति होती है।

४४८

जिनके पास धर्म शिक्षा प्राप्त करे उनके प्रति सदा विनय भाव रखना चाहिए।

४४९

विनीत शिष्य आचार्य को कुपित जानकर प्रीतिकारक वचनों से उन्हें प्रसन्न करे, हाथ जोड़कर उन्हें शान्त करे, और अपने मुख से ऐसा कहे कि 'पुनः मैं ऐसा नहीं करूंगा'।

४५०

विनय स्वयं एक तप है और श्रेष्ठ धर्म है।

४५१

गुरुसेवा से जीव तीर्थंकर नाम गोत्र जैसे उत्कृष्ट पुण्यकर्म का उपार्जन करता है।

४५४

तम्हा विणयमेसिज्जा, सोल पडिलभेज्जओ

४५५

विणय मूले धम्मे पन्नते

४५६

जत्थेव धम्मायरियं पासेज्जा
तत्थेव वदिज्जा नमंसिज्जा

४५७

रायणिएसु विणय पऊजे

४५८

जे आयरिय उवज्झायाणं सुस्सूसा वयणं करे
तेसिं सिक्खा पवढन्ति जलसित्ताइवपायवा

४५९

विवत्ती अविणीयस्स संपत्ती विणीयस्स य

४६०

जे छन्दमाराहयई स पुज्जो

४६१

आणाणिद्देस करे गुरुणमुववाय कारए
इंगियागार सम्पन्ने से विणोए त्ति वुच्चई

४५४

विनय से साधक को शील-सदाचार मिलता है अतः उसकी खोज करनी चाहिए।

४५५

धर्म का मूल विनय-आचार है।

४५६

जहां कहीं भी अपने धर्माचार्य को देखें, वहीं उन्हे वन्दन नमस्कार करना चाहिए।

४५७

बड़ों के साथ विनय पूर्वक व्यवहार करो।

४५८

जो [illegible] आचार्य एवं उपाध्यायों की शुश्रूषा-सेवा तथा उनकी आज्ञा का पालन करता है उनकी शिक्षाएं वैसे ही बढ़ती है जैसे जल से सींचे जाने पर वृक्ष।

४५९

अविनीत दुर्गुण का भागी होता है और विनीत गुण का भागी।

४५४

तम्हा विणयमेसिज्जा, सोल पडिलभेज्जओ

४५५

विणय मूले धम्मे पन्नते

४५६

जत्थेव धम्मायरियं पासेज्जा
तत्थेव वंदिज्जा नमंसिज्जा

४५७

रायणिएसु विणय पऊजे

४५८

जे आयरिय उवज्झायाणं सुस्सूसा वयणं करे
तेसिं सिक्खा पवढन्ति जलसित्ता इवपायवा

४५९

विवत्ती अविणीयस्स संपत्ती विणीयस्स य

४६०

जे छन्दमाराहयई स पुज्जो

४६१

आणाणिद्देस करे गुरुणमुववाय कारए
इंगियागार सम्पन्ने से विणीए त्ति वुच्चई

४५४

विनय से साधक को शील-सदाचार मिलता है अतः उसकी खोज करनी चाहिए ।

४५५

धर्म का मूल विनय-आचार है ।

४५६

जहां कही भी अपने धर्माचार्य को देखे, वही उन्हें वन्दन नमस्कार करना चाहिए ।

४५७

बडों के साथ विनय पूर्वक व्यवहार करो ।

४५८

जो अपने आचार्य एव उपाध्यायो की शुश्रूपा-सेवा तथा उनकी आज्ञा का पालन करता है उनकी शिक्षाएं वैसे ही बढती है जैसे कि जल से सीचे जाते पर वृक्ष ।

४५९

अवनीत दुःख का भागी होता है और विनीत सुख का भागी ।

४६०

जो गुरुजनो की आज्ञा का पालन करता है, वह शिष्य पूज्य होता है ।

४६१

जो गुरुजनो की आज्ञा का पालन करता है उनके निकट संपर्क मे रहता है एवं उनके हर सकेत व चेष्टा के प्रति सजग रहता उसे विनीत कहा जाता है ।

४६२

अणुसासिओ न कुप्पिज्जा

४६३

हियं तं मण्णई पण्णो वेसं होइ असाहुणो

४६४

रमए पडिए सासं हयं भद्द व वाहए

४६५

बालं सम्मइ सासंतो गलियस्सं व वाहए

४६६

नच्चानमइ मेहावी

४६७

विणए ठविज्ज अप्पाणं इच्छन्तो हियमप्पणो

४६२

गुरुजनों के अनुशासन से कुपित नही होना चाहिए।

४६३

विनीत शिष्य गुरुजनों की हितशिक्षा को हितकर मानता है पर अवनीत को वे बुरी लगती है।

४६४

विनीत शिष्य को शिक्षा देता हुआ ज्ञानी गुरु उसी प्रकार प्रसन्न होता है जिस प्रकार अच्छे घोड़े पर सवारी करता हुआ घुडसवार।

४६५

मूर्ख शिष्यो को शिक्षा देता हुआ गुरु वैसे ही खिन्न होता है जैसे अडियल घोड़े पर चढा हुआ सवार।

४६६

बुद्धिमान ज्ञान प्राप्त करके विनीत हो जाता है।

४६७

अपनी आत्मा का हित चाहने वाले को विनय धर्म मे स्थिर रहना चाहिए।

ब्राह्मण कौन ?

४६८
जो न सज्जइ आगंतुं पव्वयंतो न सोयई
रमइ अज्ज-वयणम्मि तं वयं बूम माहणं

४६९
जायरुवं जहामट्ठं निद्धंतमल पावगं
राग-दोस-भयाईयं तं वयं बूम माहणं

४७०
तसपाण वियाणेत्ता संगहेण य थावरे
जो न हिंसइ तिविहेण तं वयं बूम माहणं

४७१
कोहा वा जइ वा हासा लोहा वा जइ वा भया
मुसं न वयई जोउ त वयं बूम माहणं

४७२
चित्तमतमचित्तं वा अप्प वा जइ वा बहुं
न गिण्हेइ अदत्तं जे तं वयं बूम माहणं

ब्राह्मण कौन ?

४६८

जो आने वाले स्नेही जनों में, आसक्ति नही रखता और जो उनके जाने पर शोक नहीं करता जो सदा आर्य वचनों मे रमण करता है, उसे हम ब्राह्मण कहते है ।

४६९

जो अग्नि में तपाकर शुद्ध किए हुए और कसौटी पर परखे हुए सोने के समान निर्मल है, जो राग द्वेष तथा भय से रहित है, उसे हम ब्राह्मण कहते है ।

४७०

जो जंगम स्थावर सभी प्राणियों को भलीभाति जानकर उनकी तन मन वचन से कभी हिंसा नही करता, उसे हम ब्राह्मण कहते है ।

४७१

जो क्रोध से हास्य लोभ अथवा भय से किसी भी अशुभ, संकल्प से असत्य नही बोलता उसे हम ब्राह्मण कहते है ।

४७२

जो सचित्त अचित्त कोई भी पदार्थ चाहे वो थोडा हो या ज्यादा स्वामी के दिए विना चोरी से नही लेता उसे हम ब्राह्मण कहते है ।

४७३

दिव्वमाणु सतेरिच्छं जो न सेवइ मेहुणं।
मणसा काय वक्केणं, तं वयं बूम माहणं ॥

४७४

जहा पोम्मं जले जायं, नोवलिप्पइ वारिणा,
एवं अलित्तं कामेहिं तं वयं बूम माहणं

४७५

जहित्तापुबं संजोग नाहू संगे य बंधवे
जो न सज्जइ भोगे सु तं वयं बूम माहणं

४७६

कम्मुणा बंभणो होइ

४७७

तवस्सियं किसं दन्तं अवचियमंससोणियं।
सुव्वयं पत्तनिव्वाणं, तं वयं बूम माहणं ॥

४७८

अलोलुयं मुहाजीविं अणगारं अकिचणं।
असंसत्तं गिहत्थेसु तं वयं बूम माहणं

४७९

बंभचेरेण बंभणो

४७३

जो देवता मनुष्य तथा तीर्यञ्च सम्बन्धी सभी प्रकार के मैथुन भाव का तन मन वचन से कभी सेवन नहीं करता उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

४७४

जैसे कमल जल में उत्पन्न होकर भी जल से लिप्त नही होता उसी प्रकार जो संसार में रह कर भी काम वासनाओं से लिप्त नही होता उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

४७५

जो स्त्री पुत्रादि के सम्बन्धो को जाति बिरादरी के मेल मिलाप को वन्धु जनों को एक बार त्याग कर उनके प्रति कोई आसक्ति नहीं रखता, दुवारा काम भोगों में नहीं फंसता उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

४७६

कर्म से ही ब्राह्मण होता है।

४७७

जो तपस्वी कृश एवं इन्द्रियों का दमन करने वाला है जिसके मांस और रुधिर का अपचय हो चुका है जो व्रतशील एवं शान्त है उसको हम ब्राह्मण कहते है।

४७८

जो मनुष्य लोलुप नही है जो निर्दोष भिक्षा वृत्ति से निर्वाह करता है, जो गृह-त्यागी है, अंकिचन है, गृहस्थों में अनासक्त है उसे हम ब्राह्मण कहते हैं।

४७९

ब्रह्मचर्य के पालन से ब्राह्मण होता है।

रात्रि भोजन

४८०

अत्थंगयमि आइच्चे, पुरत्था य अणुग्गए ।
आहारमाइयं सव्वं, मणसा वि न पत्थए ।।

४८१

सन्तिमे सुहुमा पाणा, तसा अदुव थावरा
जाइं राओ अपासंतो, कहमेसणियं चरे

४८२

से असणं वा, पाणं वा, खाइमं वा, साइमं वा,
ने वसयं राइंभुञ्जिजज्जा नेवन्नेहि राइं
भुंज्जाविज्जा राइं भुँजंते
वि अन्ने न समणुजाणिज्जा

४८३

राईभोयण विरओ जीवभवई अणासवो

४८४

उदउल्लं बीयसंसत्तं, पाणा निव्वडिया महिं ।
दिया ताइं विवज्जेज्जा राओ तत्थ कहं चरे ।।

रात्रि भोजन

४८०

सूर्योदय के पहले या सूर्यास्त के बाद संयमी मनुष्य को भोजन पान आदि किसी भी वस्तु की मन से इच्छा नही करनी चाहिए।

४८१

संसार मे बहुत से त्रस और स्थावर प्राणी बडे ही सूक्ष्म होते है वे रात्रि को दिखाई नही देते तब रात्रि भोजन कैसे किया जा सकता ?

४८२

साधक अन्नपाणखादमस्वादम इन चारो आहार का रात्रि में न स्वय सेवन करे न करावे न करते हुए को भला जाने।

४८३

जो रात्रि भोजन से विरत रहता दूर रहता वह आस्त्रव रहित हो जाता है।

४८४

कही जमीन पर कुछ पडा होता है, कही बीज बिखरे होते हैं और कही पर सूक्ष्म कीडे मकोड़े होते है दिन में तो उन्हे टाला जा सकता है किन्तु रात्रि मे उन्हे बचाकर भोजन कैसे किया जा सकता है।

४८५

चउव्विहे वि आहारे राई भोयण वज्जणा
सन्निही संचओ चेव वज्जेयव्वो सुदुक्करं

४८६

अग्गं वणिएहि आहियं धारंति राइणिया इहं
एवं परमामहव्वया अक्खाया उ सराइभोयणा

४८७

सव्वाहारं न भुंजंति, निग्गंथा राइभोयणं

४८५

अन्न आदि चतुर्विध आहार का रात्रि मे सेवन नहीं करना चाहिए तथा दूसरे दिन के लिए भी रात्रि में खाद्य पदार्थ का संग्रह करना निषिद्ध है। अतः रात्रि भोजन का त्याग वास्तव में बडा दुष्कर है।

४८६

जिस प्रकार दूर-देशान्तर से व्यापारी द्वारा लाये हुए बहुमूल्य रत्नो को राजा लोग ही धारण कर सकते है। इसी प्रकार तीर्थंकर द्वारा कथित रात्रि भोजन त्याग के साथ पंचमहाव्रतों को कोई विशिष्ट आत्मा ही धारण कर सकती है।

४८७

निर्ग्रन्थ मुनि रात्रि के समय किसी भी प्रकार का आहार नही करते।

सदाचार

४८८

जहा सुणी पुइकन्नी निक्कसिज्जई सव्वसो
एवं दुस्सील पडिणीए मुहरी निक्कसिज्जई

४८९

कणकुण्डगं चइत्ताणं विट्ठंभुंजइ सूयरे
एवं सीलं चइत्ताणं दुस्सीले रमई मिए

४९०

विणए उविज्ज अप्पाणं
इच्छन्तो हियमप्पणो

४९१

चीराजिणं नगिणिणं जडिसंघाडि मुँडिणं
एयाणि वि न तायन्ति दुस्सीलंपरियागयं

४९२

भिक्खाए वा गिगत्थे वा
सुव्वए कम्मइ दिवं

सदाचार

४८८

जिस प्रकार सड़े हुए कानों वाली कुतिया जहाँ भी जाती है, निकाल दी जाती है उसी प्रकार दुःशील उद्दंड और वाचाल मनुष्य भी सर्वत्र धक्के देकर निकाल दिया जाता है।

४८९

जिस प्रकार चावलों का स्वादिष्ट भोजन छोड़कर शूकर विष्ठा खाता है उसी प्रकार पशुवत जीवन बिताने वाला अज्ञानी सदाचार को छोड़ कर दुराचार को पसन्द करता है।

४९०

आत्मा का हित चाहने वाला साधक स्वयं को सदाचार मे स्थिर करे।

४९१

चीवर, मृगचर्म, नग्नता, जटाएं, और शिरोमुंडन, ये सभी उपक्रम आचार हीन साधक की दुर्गति से रक्षा नही कर सकते।

४९२

भिक्षु हो चाहे गृहस्थ हो जो सदाचारी है वह दिव्य गति को प्राप्त होता है।

४६३

गिहिवासे वि सुव्वए
न संतसंति मरणं ते सीलवन्ता बहुस्सुया ।

४६४

नतं अरी कंठछित्ताकरेइ
जं से करे मप्पणिया दुरप्पा

४६५

भणंता अकरेन्ता य, बंध मोक्ख पइण्णिणो ।
वायावीरियमेत्तेण, समासासेन्ति अप्पयं ॥

४६६

न चित्ता तायए भासा, कुओ विज्जाणुसासणं

४६७

मा णं तुमं पदेशी
पुव्वं रमणिज्जे भवित्ता,
पच्छा अरमणिज्जे भवेज्जासि ।

४६३

धर्म शिक्षा सम्पन्न गृहस्थ गृहवास में भी सदाचारी है। ज्ञानी और सदाचारी आत्माएं मरण काल में भी भयाक्रान्त नहीं होते।

४६४

गर्दन काटने वाला शत्रु भी इतनी हानि नही करता जितनी हानि दुराचार में प्रवृत्त अपना ही स्वयं का आत्मा कर सकता है।

४६५

बन्ध और मोक्ष की चर्चा करने वाले दार्शनिक केवल वाणी के बल पर ही आत्मा को आश्वासन देते हैं। किन्तु आचरण कुछ भी नहीं करते वे केवल बोलकर ही रह जाते हैं।

४६६

विविध भाषाओं का ज्ञान मनुष्य को दुर्गति से बचा नही सकता तो फिर विद्याओ का अनुशासन कैसे किसी को बचा सकेगा ?

४६७

हे राजन्। तुम जीवन के पूर्वकाल में रमणीय होकर उत्तर काल मे अरमणीय मत बनना।

४९८

तमे णामं एगे जोइ, जोई णामं एगे तमे ।

४९९

धम्मज्जियं च ववहारं बुद्धेहि आयरियं सया ।
तमायरंतो ववहार गरहं णाभिगच्छइ ॥

४९८

कभी कभी अज्ञान अन्धकार में भी सदाचार की ज्योति जल उठती है और कभी कभी ज्ञान ज्योति पर दुराचार का अन्धकार भी छा जाता है ।

४९९

जो व्यवहार धर्म संगत है जिसका तत्वज्ञ आचार्यों ने सदा आचरण किया उस व्यवहार सदाचार का आचरण करने वाला मनुष्य कभी भी निन्दा का पात्र नहीं होता ।

सेवा

५००

वेयावच्चेणं तित्थयर नामगोयंकम्मं निबंधेइ

५०१

असंगिहीय परिजणस्स सगिण्हणयाए अब्भुट्टेयव्वं भवई

५०२

गिलाणस्स अगिलाए वेयावच्चकरणयाए
अब्भुट्ठेयव्वं भवइ

५०३

समाहिकारए णं तमेव समाहिं पडिलब्भई

५०४

सुस्सूसए आयरि अप्पमत्तो

सेवा

५००

आचार्यादि की वैयावृत्य करने से जीव तीर्थंकर नाम गौत्र का उपार्जन करता है।

५०१

अनाश्रित एवं असहायजनों को सहयोग एवं आश्रय देने के लिए तत्पर रहना चाहिए।

५०२

रोगी की सेवा करने के लिए सदा अग्लानभाव से तैयार रहना चाहिए।

५०३

जो दूसरो के सुख एवं कल्याण का प्रयत्न करता है वह स्वयं भी सुख एवं कल्याण को प्राप्त होता है।

५०४

शिष्य अप्रमादी होता हुआ आचार्य की सेवा भक्ति करे.

सत्संग

५०५

सवणे नाणे य विन्नाणे, पच्चक्खाणेय संजमे
अणण्हये तवे चेव, वोदाणे अकिरिया सिद्धी

५०६

कुज्जा साहूहि संथवं

सत्संग

५०५

सत्संग से धर्म, श्रवण से तत्व ज्ञान, तत्वज्ञान से विज्ञान-विशिष्ट तत्व बोध, विज्ञान से प्रत्याख्यान, सांसारिक पदार्थों से विरक्ति प्रत्याख्यान से संयम, संयम से अनाश्रव, नवीन कर्म का अभाव अनाश्रव से तप, तप से पूर्वबद्ध कर्मों का नाश, पूर्वबद्ध कर्म नाश से निष्कर्मता, सर्वथा कर्म रहित स्थिति और निष्कर्मता से सिद्धि अर्थात् मुक्त स्थिति प्राप्त होती है।

५०६

हमेशा साधु के साथ ही सत्संग करो।

संतोष

५०७

संतोसिणो नो पकरेंति पावं

५०८

सट्टे अतित्तेय परिग्गहम्मि
सत्तो व सत्तो न उवेइ तुट्ठिं

५०९

संतोसपाहन्नरए स पुज्जो

संतोष

५०७

सन्तोषी साधक कभी पाप नहीं करते।

५०८

शब्द आदि विषयों में अतृप्त और परिग्रह में आसक्त रहने वाला आत्मा संतोष को कभी प्राप्त नहीं होता।

५०९

जो संतोष के पथ में रमता है, वही पूज्य है।

कर्त्तव्य

५१०

अकिरियं परिवज्जए

५११

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं

५१२

जाइ सद्धाइ निक्खत्तो
तमेव अणु पालिज्जा

५१३

णो जीवितं णो मरणाहि कंखी

५१४

अणट्ठाजे य सव्वत्था परिवज्जेज्ज

५१५

रायणिएसु विणयं पउंजे

५१६

अलं बालस्स संगेणं

५१७

चरेज्ज अत्त गवेसए

कर्त्तव्य

५१०

अकर्त्तव्य का परिवर्जन कर दें ।

५११

सभी सुकृत्य मनुष्यो के लिए अच्छा फल लाने वाले होते है ।

५१२

जिस श्रद्धा के साथ धर्म मार्ग पर निकले उसी अनुसार उसका अनुपालन करे ।

५१३

अनासक्त महापुरुष न तो जीवन की आकाक्षा करे और न मृत्यु की ही आकाक्षा करे ।

५१४

जो अनर्थ रूप है उन्हें सर्वथा छोड़ दे ।

५१५

ज्ञानदर्शन चारित्र में वृद्धपुरुषो के प्रति विनय रखना चाहिए ।

५१६

मूर्ख आदमियो के संसर्ग से दूर रहो ।

५१७

आत्मा का अनुसंधान करने वाला चारित्र शील हो ।

५१८

धुय मायरेज्ज

५१९

अतत्ताए परिव्वए

५२०

निव्विंदेज्ज सिलोग पूयण

५२१

सुपरिच्चाई दमं चरे

५२२

सत्यार भत्ती अणुवीई वायं

५१८

संयम का आचरण करो ।

५१९

आत्मा को पाप से बचाने के लिए संयम शील हो ।

५२०

अपनी प्रशंसा पूजा और प्रतिष्ठा से दूर ही रहो ।

५२१

सुपरित्यागी इन्द्रिय दमन रूप धर्म का आचरण करे ।

५२२

आचार्य की भक्ति विचार पूर्वक वाणी में रही हुई है ।

आत्मा

५२३

एगे आया

५२४

नो इन्दियगेज्झ अमुत्तभावा
अमुत्तभावा वि य होइ निच्चो

५२५

अरुवी सत्ता अपयस्स पयं नत्थि।

५२६

जेण वियाणाई से आया।

५२७

कप्पिओ फालिओ छिन्नो उक्कित्तो अ अणेगसो

५२८

दद्धो पक्को अ अवसो पावकम्मेहिं पाविओ

आत्मा

५२३

स्वरूप दृष्टि से सभी आत्माएं समान है।

५२४

मुक्त जीवात्मा अमूर्त स्वरूप है, इसलिए इन्द्रियों द्वारा ग्राह्य नही है, अमूर्त स्वरूप होने की वजह से वह निश्चय पूर्वक नित्य है।

५२५

मुक्त जीव अरूपी सत्ता वाला होता है, शब्दातीत के लिए शब्द नही होता अपद के लिए पद नही है।

५२६

जिससे ज्ञान होता है, वही आत्मा है।

५२७

यह आत्मा अनेक वार काटा गया, फाड़ा गया, छेदन किया गया और चमड़ी उतारी गयी। फिर भी आत्मा-आत्मा है।

५२८

यह पापी आत्मा पापकर्मो द्वारा आग से जलाया गया, पकाया गया और दुःख झेलने के लिए विवश किया गया। फिर भी यह ज्यों का त्यों है।

५२९

अन्नो जीवो अन्नं सरीरं

५३०

अहं अव्वए वि अहं अवट्ठिए वि

५३१

हत्थिस्स य कुंथुस्स य समे चेव जीवे

५३२

अत्तकडे दुःक्खे नो परकडे

५३३

सरीर माहु नावत्ति, जीवो वुच्चइ नाविओ
संसार अण्णवो वुत्तो जे तरन्ति महेसिणो

५३४

वरं मे अप्पा दन्तो संजमेण तवेण य
माऽहं परेहिं दम्मन्तो बन्धणेहिं वहेहिय

५३५

न तं अरी कंठ छेत्ता करेइ जं से करे अप्पणिया दुरप्पा

५२९

आत्मा और है शरीर और है ।

५३०

मै आत्मा अविनाशी हूँ और अवस्थित भी हूँ ।

५३१

आत्मा की दृष्टि से हाथी और कुन्थुआ इन दोनों में एक ही आत्मा है ।

५३२

आत्मा का दुःख अपना ही किया हुआ दुःख है, किसी अन्य का नही ।

५३३

शरीर नाव है, आत्मा नाविक है । संसार समुद्र है इस संसार समुद्र को महर्षि जन पार करते हैं ।

५३४

दूसरे लोग मेरा बन्धनादि से दमन करे इसकी अपेक्षा मैं सयम और तप के द्वारा अपना दमन करूँ, यह अच्छा है ।

५३५

सिर काटने वाला शत्रु भी उतना बुरा नही करता जितना दुराचरण में आसक्त आत्मा करती है ।

५३६

संबुज्झह किं न बुज्झह संबोहि खलु पेच्च दुल्लहा
नो हुवणमंतिराइओ नो सुलभं पुणरावि जीवियं

५३७

भावणा जोग सुद्धप्पा, जले नावा व आहिया
नावा व तीर सम्पन्ना, सव्वदुक्खातिउट्टइ

५३८

जे एगं जाणइ से सव्वं जाणइ

५३९

सुयं च अज्झत्थं च मे बंध पमोक्खो अज्झत्थेव

५४०

जे आया से विन्नाया जे विन्नाया से आया

५४१

इमेण मेव जुज्झाहि किं ते जुज्झेण बज्झओ
जुज्झारिहं खलु दुल्लहं

५३६

मनुष्यो ! जागो जोगो, अरे तुम क्यो नही जगते ? परलोक में अन्तर्जागरण प्राप्त होना दुर्लभ है । बीती हुई रात्रियाँ कभी लौट कर नही आती पुनः मानव जीवन पाना आसान नहीं है अत. अपने आपको समझिए ।

५३७

भावना योग से जिसका अन्तरात्मा शुद्ध हो गया है वह पुरुष जल मे नाव के समान माना गया है. जैसे तीर भूमि को पाकर नाव विश्राम करती है इसी प्रकार वह मानव सब दुःखो से छुटकारा पा जाता है ।

५३८

जो एक आत्म स्वरूप को जानता है, वह सव कुछ जानता है ।

५३९

मैंने सुना है और अनुभव किया है कि बन्ध और मोक्ष तुम्हारी आत्मा पर ही निर्भर करता है ।

५४०

जो आत्मा है वह विज्ञाता है जो विज्ञाता है वही आत्मा है ।

५४१

मनुष्य जीवन पाकर कर्मो से युद्ध करो, वाह्ययुद्धों से तुझे क्या लेना-देना है ? यदि इस वार चूक गए तो युद्ध के योग्य नर जन्म मिलना कठिन है ।

५४२

अप्पानई वेयरणी अप्पा मे कूड़ सामली
अप्पा काम दुहा धेणू अप्पामे नन्दणं वण

५४३

अप्पाकत्ताविकत्ताय दुहाणय सुहाणय
अप्पामित्तममित्तं च दुपट्ठिअ सुपट्ठिओ

५४४

अप्पा चेव दमेयव्वो अप्पाहु खलु दुद्दमो
अप्पा दन्तो सुहो होइ अस्सि लोए परत्थय

५४५

अप्पाण मेव जुज्झाहि
कि ते जुज्झेण बज्झओ

५४६

अप्पाणं जइत्ता सुह मेहए

५४७

सव्वं अप्पे जिए जिय

५४२

अपनी आत्मा ही नरक की वैतरणी नदी तथा कूटशाल्मली वृक्ष है और अपनी आत्मा ही स्वर्ग की काम दुधाधेनु तथा नन्दन वन है।

५४३

आत्मा ही अपने सुख-दुःख का कर्ता तथा भोक्ता है अच्छे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना मित्र है और बुरे मार्ग पर चलने वाला आत्मा अपना शत्रु है।

५४४

आप अपने आप अपना दमन कीजिए। क्योंकि अपने से अपना दमन कठिन है। जो अपने से अपना दमन कर सकता है, वह दोनो लोको मे सुखी रहता है।

५४५

आत्मा से ही युद्ध करो। वाह्य युद्ध से तुम्हे क्या प्राप्त होने वाला है ?

५४६

आत्मा को जीत कर सुख प्राप्त करो।

५४७

आत्मा को जीत लेने पर सब कुछ जीता हुआ ही है।

५४८

जे अज्झत्थं जाणइ से बहिया जाणइ
जे बहिया जाणइ से अज्झत्थं जाणइ

५४९

एगं जिणेज्ज अप्पाणं
एस से परमो जओ

५५०

पाड़िओ फालिओ छिन्नो
विप्फुरन्तो अणेगसो

५४८

जो आंतरिक को जानता है वही बाह्य को भी जानता है और जो बाह्य को जानता है वही आंतरिक को भी जानता है।

५४९

अकेली आत्मा पर ही विजय प्राप्त करो यही सर्वश्रेष्ठ विजय है।

५५०

यह आत्मा अनेक वार इधर उधर भागते हुए पटका गया, फाड़ा गया, छिन्न-भिन्न किया गया।

वैराग्य

५५१

एगे अहमंसि न मे अत्थिकोइ
न या हमवि कस्स वि

५५२

परिजूरइ ते सरीर यं

५५३

विड्डइ विद्धंसइ ते सरीर यं

५५४

दुमपत्तए पंडुयए जहा
एवं मणुयाण जीवियं

५५५

कुसग्गे जह ओस विंदुए
एवं मणुयाण जीवियं

५५६

कुसग्गे पणुन्नं निवइयं वाएरियं
एवं बालस्स जीवियं

वैराग्य

५५१

मैं अकेला ही हूँ, मेरा कोई नही है, और मैं भी किसी का नही हूँ ।

५५२

तुम्हारा शरीर निश्चय ही जीर्ण होने वाला है ।

५५३

हे गौतम ! यह तुम्हारा शरीर छूट जाने वाला है, विध्वंस हो जाने वाला है ।

५५४

जैसे वृक्ष का पीला पत्ता गिर पड़ता है, वैसे ही मनुष्य के जीवन को समझो ।

५५५

जैसे घास पर ओस की बुद अस्थिर होती है वैसे ही यह मनुष्य जीवन भी अस्थिर है ।

५५६

जैसे कुशाग्र पर ठहरा हुआ जलबिंदु हवा द्वारा प्रेरणा पाकर गिर पड़ता है वैसे ही बाल जन का भोगी जीवन भी नष्ट हो जाता है ।

५५७

ण य संखय माहु जीवितं
तह विय वाल जणो पगब्भई

५५८

तरुण ए वाससयस्स तुट्टती
इत्तर वासे य वुज्झह

५५९

ताले जह वंधण चुए
एवं आउक्खयंमि तुट्टती

५६०

एको सयं पच्चणु होइ दुक्खं

५६१

मच्चुणाऽब्भाहओ लोगो
जराए परिवारिओ

५६२

माया पिया ण्हुसा भाया
नालं ते मम ताणाए

५६३

एगत्त मेयं अभिपत्थएज्जा

५५७

टूटा हुआ जीवन पुनः नही जोडा जा सकता है फिर भी बाल-जन पाप करता ही रहता है।

५५८

सो वर्ष की आयु वाले पुरुष की आयु भी तरुण अवस्था मे टूट जाया करती है अतः यहां पर अल्प कालीन वास ही समझो।

५५९

जैसे वंधन से गिरा हुआ ताड़फल टूट जाता है वैसे ही आयुष्य के क्षय होते ही प्राणी परलोक चला जाता है।

५६०

दुःख का अनुभव अकेले को ही और खुद को ही करना पड़ता है।

५६१

यह संसार मृत्यु से पीड़ित है और बुढ़ापे से गिरा हुआ है।

५६२

माता पिता पुत्र वन्धु भाई कोई भी मेरी रक्षा के लिए समर्थ नही है।

५६३

एकत्व भावना की ही प्रार्थना करो।

५६४

एगस्स जंतो गति रागतीय

५६५

संवेगेणं अणुत्तरं धम्म सद्धं जणयइ

५६६

विरत्ता उ न लग्गन्ति
जहा सुक्को गोलओ

५६७

कम्माणं तु पहाणाए आणुपुव्वी कयाइउ
जीवा सोहि मणुपत्ता आययंति मणुस्सयं

५६८

जम्मं दुःक्ख जरा दुःक्खं, रोगाय मरणाणिय
अहो दुःक्खो हु संसारो, जत्थ कीसंति जंतुणो

५६९

जाणित्तुं दुक्खं पत्तेयं, सायं अणभिक्कंतच
खलु वय सपेहाए, खणं जाणाहि पंड़िए।

५७०

माणुसत्ते असारम्मि, बाहिरोगाण आलए।
जरा मरण घत्थम्मि, खणं पि न रमामहं।

५६४

प्राणी अकेला ही जाता है, और अकेला ही आता है।

५६५

वैराग्य भावना से श्रेष्ठ धर्म रूप श्रद्धा उत्पन्न होती है।

५६६

जैसे सूखे गोले पर कुछ चिपक नहीं सकता वैसे ही विरक्त आत्माएं कर्म मल से संलग्न नही होतीं।

५६७

जब पाप कर्मों का वेग क्षीण होता है और अन्तरात्मा क्रमशः शुद्धि को प्राप्त होता है तब कही मनुष्य जन्म मिलता है।

५६८

जन्म दुःख है जरा बुढापे का दुःख है रोग मरण का दुःख है, अहो ! सारा संसार दुःख रूप ही है। यहाँ सब प्राणी दुःख की आग मे जल रहे हैं।

५६९

पण्डित ! सुख और दुःख प्रत्येक प्राणी को सहने पड़ते है, अब भी जीवन की घडियाँ शेष हैं। इस प्रकार का विचार करके अवसर को पहचान इसे मत भूल।

५७०

मानव शरीर असार है आधिव्याधियों का घर है जरा और मरण से ग्रस्त है अतः मैं क्षण भर भी इसमे रहना नही चाहता।

५७१

असासए सरीरम्मि, रइं नोवलभामहं।
पच्छा पुरा व चइयव्वे, फेणबुब्बुय सन्निभे

५७२

जीविय चेव रुवं च, विज्जुसंपाय चञ्चल
जत्थ तं मुज्झसिराय पेच्चत्थं नाव बुज्झसि

५७३

जो परिभवइ पर जण, ससारे परिवत्तई महं।
अदु इंखिणिया ऊ पाविया, इति संखाय मुणीण मज्झई।

५७४

जेण सिया तेण णोसिया इणमेव
नाव बुज्झन्ति जे जणा मोह पाउडा

५७५

जह तुब्भे अह अम्हे तुम्हे, वि होहिहा जहा अम्हे
अम्पाहेइ पडंत पंडुअ, पत्तं किस लयाणं

५७१

यह शरीर पानी के बुलबुले के समान क्षण भंगुर है, पहले या पीछे एक दिन इसे छोड़ना है अत. इसके प्रति मेरी तनिक भी आसक्ति नही है।

५७२

मनुष्य का जीवन और रूप सौन्दर्य विजली की चमकवत् चंचल है। राजन् आश्चर्य है, फिर भी तुम इस पर मुग्ध हो रहे हो परलोक की ओर क्यो नही निहारते ?

५७३

जो मनुष्य दूसरे का तिरस्कार करता है वह चिर काल तक संसार मे परिभ्रमण करता है। पर निन्दा पाप का कारण हैं यह समझ कर साधक अहंभाव का पोषण नही करते।

५७४

तुम जिनसे सुख की आशा रखते हो वस्तुतः वे सुख के कारण हैं नही, मोह से घिरे हुए लोग इस वात को नही समझते।

५७५

पीला पत्ता जमीन पर पड़ता हुआ अपने साथी हरे पत्तो से कहता है, आज जैसे तुम हो एक दिन हम भी ऐसे ही थे और आज जैसे हम है एक दिन तुम्हे भी ऐसा ही होना है।

५७६

जावंतविज्जा पुरिसा, सव्वे ते दुक्ख सभवा ।
लुप्पंति बहुसो मूढा, संसारम्मि अणंतए ।

५७७

जीवियनाभि कंखेज्जा, मरण ना वि पत्थए ।
दुहओ वि न सज्जेज्जा, जीविए मरणे तहा ।

५७६

जितने भी अज्ञानी पुरुष है वे सब दुःख के भागी है। सत् असत् के विवेक से शून्य वे इस अनन्त संसार मे बार-बार पीड़ित होते रहते है।

५७७

साधक, न तो जीवित रहने की इच्छा करे और न शीघ्र मरना ही चाहे, जीवन तथा मरण किसी मे भी आसक्ति न रखे।

श्रमण

५७८

सम सुह दुक्ख सहे अजे स भिक्खू

५७९

रोइ अनाय पुत्तवयणे पंचासव संवरे जे सभिक्खू

५८०

वंतं नो पड़िआयइ जे सभिक्खू

५८१

जे कम्हि विन मुच्छिए स भिक्खू

५८२

मण वय कायसु संवुड़े स भिक्खू

५८३

धम्मज्झाणरए अजे स भिक्खू

५८४

सव्व संगावगए अ जे स भिक्खू

५८५

अणाइले या अकसाइ भिक्खू

श्रमण

५७८

जो सुख दुःख सहने में समभाव रखता है, वह भिक्षु है ।

५७९

ज्ञातपुत्र महावीर के वचन में रूचि लाकर जो पांचो आश्रवों का संवर करता है, वही भिक्षु है ।

५८०

त्यागे हुए को जो पुनः ग्रहण नही करता वही भिक्षु है ।

५८१

जो किसी मे भी मूर्च्छित नही होता है वही भिक्षु है ।

५८२

जो मन वचन काया के द्वारा संवृत्त है, व्रत शील है, वही भिक्षु है ।

५८३

जो धर्म ध्यान मे रत है वही भिक्षु है ।

५८४

जो सभी प्रकार की संगति से दूर है वही भिक्षु है ।

५८५

अनाविल (पापरहित) अथवा अकषायी ही भिक्षु होता है ।

५८६

निग्गंथा उज्जु दंसिणो

५८७

धम्मारामे चरे भिक्खू

५८८

भिक्खू सुसाहुवादी

५८९

चरे मुणी सव्वउ विप्पमुक्के

५९०

निद्दं च भिक्खू न पमाय कुज्जा

५९१

अलोलं भिक्खू न रसे सुगिज्झे

५९२

सामण्णं दुच्चरं

५९३

मुणी ण मज्जई

५९४

निम्ममो निरहंकारो, चरे भिक्खू जिणाहयं।

५९५

अभयंकरे भिक्खु अणाविलप्पा

५८६

निर्ग्रन्थ सरल दृष्टि वाले होते हैं।

५८७

भिक्षु धर्म रूपी वाटिका में ही विचरे।

५८८

भिक्षु सत्य और मधुर बोलने वाला होता है।

५८९

सब तरह से प्रपंञ्च से दूर रहता हुआ मुनि जीवन का व्यवहार चलावे।

५९०

भिक्षु निद्रा और प्रमाद नहीं करे।

५९१

अचंचल होता हुआ (अनासक्त होता हुआ) भिक्षुओं मे गृद्ध न हो।

५९२

श्रमण धर्म का आचरण करना अति कठिन है।

५९३

मुनि अहंकार नही करता है।

५९४

ममता रहित और अहंकार रहित होता हुआ भिक्षु जिन आज्ञानुसार विचरे।

५९५

रागद्वेष रहित आत्मा वाला भिक्षु अभय दान देता रहे।

५९६

भिक्खवत्ती सुहावहा

५९७

मुणीमोणंसमायाय धुणे कम्म सरीरगं

५९८

समे य जे सव्वपाण, भूतेसु सेहु समणे

५९९

विहंगमा व पुप्फेसु दाणभत्ते सणे रया

६००

अवि अप्पणो विदेहम्मि नायरंति ममाइयं

६०१

भुच्चा पिच्चा सुहं सुवई, पावसमणेत्ति वुच्चइ

६०२

असविभागो अचियत्ते पावसमणेत्ति वुच्चइ

६०३

सो समणो जइ सुमणो, भावेण जइण होइ पावमणो ।
सयणे य जणे य समो, समो य माणावमाणेसु ॥

५९६

भिक्षा वृत्ति सुखों को लाने वाली है।

५९७

मुनि मौन को ग्रहण करके शरीर में रहे हुए (आत्मस्थ) कर्मों को कंपित कर दे।

५९८

जो समस्त प्राणियों के प्रति समभाव रखता है वही श्रमण है।

५९९

श्रमण जीवनोपयोगी आवश्यक्ताओं की इस प्रकार पूर्ति करे कि किसी को कुछ कष्ट न हो।

६००

अकिंचन मुनि, और तो क्या अपने देह पर भी ममत्व नहीं रखते।

६०१

जो श्रमण खा पीकर खूब सोता है, समय पर धर्माराधना नही करता है, वह पाप श्रमण कहलाता है।

६०२

जो श्रमण प्राप्त सामग्री को साथियो में बांटता नही है वह पाप श्रमण कहलाता है।

६०३

जिसका हृदय सदा प्रफुल्लित है जो कभी भी पाप चिन्ता नहीं करता जो स्वजन परजन तथा मान और अपमान बुद्धि का सन्तुलन रखता है वही श्रमण है।

६०४

जह मम न पिय दुक्खं, जाणिय एमेव सव्वजीवाणं ।
न हणइ न हणावेइ य, समणमई तेण सो समणो ॥

६०५

णत्थि ये से कोइ वेसो पिओ य सव्वेसु चेव जीवेसु ।
एएण होइ समणो, एसो अन्नो वि पज्जाओ ॥

६०६

नाणदंसणसम्पन्नंसंजमे य तवे रयं
एवं गुण समाउत्तं संअयं साहुमालवे ।

६०४

जिस प्रकार मुझे दुःख अच्छा नही लगता उसी प्रकार सभी जीवों को दुःख अच्छा नही लगता यह समझ कर जो न स्वयं हिंसा करता न करवाता अर्थात् सभी प्राणियों पर समबुद्धि रखता है वही श्रमण है।

६०५

श्रमण की एक व्याख्या यह भी है कि जो किसी से द्वेष नही करता जिसे सब समान भाव से प्रिय है, वह श्रमण है।

६०६

सच्चा श्रमण उसी को कहना चाहिए जो ज्ञान और दर्शन से सम्पन्न हो संयम और तपश्चरण में लीन हो और सदा सद्‌गुण को धारण करने वाला हो।

श्रमणोपासक

६०७

धम्मेणं चेव वित्तिं कप्पेमाणाविहरंति

६०८

चत्तारि समणोवासगा अद्दागसमाणे
पडागसमाणे खाणु समाणे खरकंट समाणे

६०९

उस्सिय फलिहा, अवंगुय-दुवारा,
चियत्तंतेउर-परघरपवेसा ।

ज्ञान

६१०

आत्म ज्ञानी साधक को किसी भी स्थिति में न हर्षित होना चाहिए न कुपित ही।

६११

तत्वद्रष्ट्रा को किसी के उपदेश की अपेक्षा नही है।

६१२

ज्ञानी के लिए बन्ध या मोक्ष जैसा कुछ नही है।

६१३

जो अपने ज्ञान से संसार को ठीक तरह जानता है, वही मुनि कहलाता है।

६१४

जो संसार के दुःखों का ठीक तरह से दर्शन कर लेता है, वह पाप कर्म नही करता।

६१५

ज्ञानी के लिए क्या दुःख क्या सुख ? कुछ भी नहीं है।

६१६

मुमुक्षु तपस्वी अपने कृत कर्मों का बहुत शीघ्र ही अपनयन कर देता है जैसे कि पक्षी अपने पंरो को फड़फड़ाकर उन पर लगी हुयी धूल को झाड़ देता है।

ज्ञान

६१०

तम्हा पण्डिए नो हरिसे नो कुप्पे

६११

उद्देसो पासगस्स नत्थि

६१२

कुसले पुण नो बद्धे न पुत्ते

६१३

पन्नाणेहिं परियाणह लोयं मूणोत्ति वुच्चे

६१४

आयंकदंसी न करेइ पावं

६१५

का अइई के आणंदे ?

६१६

सउणीजह पंसु गुंडिया, विहुणिय धंसयई सियं रयं ।
एवं दवि ओवहाण वं, कम्मं खवई तवस्सिमाहणे ॥

६१०

आत्म ज्ञानी साधक को किसी भी स्थिति में न हर्षित होना चाहिए न कुपित ही।

६११

तत्वद्रष्ट्रा को किसी के उपदेश की अपेक्षा नहीं है।

६१२

ज्ञानी के लिए वन्ध या मोक्ष जैसा कुछ नहीं है।

६१३

जो अपने ज्ञान से संसार को ठीक तरह जानता है, वही मुनि कहलाता है।

६१४

जो संसार के दुःखो का ठीक तरह से दर्शन कर लेता है, वह पाप कर्म नही करता।

६१५

ज्ञानी के लिए क्या दुःख क्या सुख ? कुछ भी नही है।

६१६

मुमुक्षु तपस्वी अपने कृत कर्मों का बहुत शीघ्र ही अपनयन कर देता है जैसे कि पक्षी अपने पैरो को फड़फड़ाकर उन पर लगी हुयी धूल को झाड़ देता है।

६१७

जहा हि अंधे सह जो तिणावि
रुवादिणो पस्सति हीणणोत्ति

६१८

आहंसु विज्जाचरणं पमोक्खं

६१९

न कम्मुणा कम्म खवेंति वाला
अकम्मुणा कम्म खवेंति धीरा

६२०

तमे णामं एगे जोई जोई णामं एगे तमे

६२१

इह भविए वि नाणे पर भविए
वि नाणे तदुभय भविए विनाणे

६२२

पढमं नाणं तओ दया

६२३

जहासूई ससुत्ता पड़िया वि न विणस्सइ
तहा जीवे ससुत्तो संसारे न विणस्सइ

६२४

नाणेण जाणइ भावे

६१७

जिस प्रकार अन्ध पुरुष प्रकाश होते हुये भी नेत्र न होने के कारण रूपादि कुछ भी नही देख पाता है इसी प्रकार प्रज्ञाहीन मनुष्य शास्त्र के समक्ष रहते हुये भी सत्य के दर्शन नही कर पाता।

६१८

ज्ञान एव विद्याचरण से ही मोक्ष प्राप्त होता है।

६१९

अज्ञानी मनुष्य पापानुष्ठान से कर्म का नाश नही कर पाते किन्तु ज्ञानी धीर पुरुष अकर्म से कर्म का क्षय कर देते हैं।

६२०

कभी कभी अज्ञानी मनुष्यों मे से भी ज्ञान ज्योति जल उठती है और कभी कभी ज्ञानी हृदय पर भी अज्ञान छा जाता है।

६२१

ज्ञान का प्रकाश इस जन्म मे रहता है परभव मे रहता है और कभी दोनो जन्मो मे भी रहता है।

६२२

पहले ज्ञान होना चाहिए फिर तदनुसार आचरण होना चाहिए।

६२३

धागे मे पिरोई हुयी सुई गिर जाने पर भी गुम नही होती, उसी प्रकार ज्ञान रूप धागे से युक्त आत्मा ससार मे भटकता नही, विनाश को प्राप्त नही होता।

६२४

ज्ञान से जीव, जीवादिक तत्वो को जानता है।

६२५

तत्थ पंचविहं नाणं सुयं अभिणिबोहियं
ओहि नाणं तु तइयं मण नाणं च केवलं

६२६

नाणेणविणा न हुंति चरण गुणा

६२७

दुविहा बोही णाण बोही चेव दंसण बोही चेव

६२८

एगेनाणे

६२९

महुगारस समावुद्धा

६३०

नाणी नो परिदेवए

६३१

सीहे मियाण पवरे एवं हवइ बहुस्सुए

६३२

सक्के देवाहिवई एवं हवई बहुस्सुए

६३३

सुयमहिट्ठिज्जा उत्तमट्ठ गवेसए

६२५

मति, श्रुत, अवधि, मनः पर्याय और केवल इस तरह ज्ञान पांच प्रकार का है।

६२६

ज्ञान के विना जीवन में चारित्र के गुणों की प्राप्ति नहीं होती है।

६२७

समझ दो प्रकार की है, ज्ञान समझ और दर्शन समझ।

६२८

उपयोग की दृष्टि से ज्ञान एक प्रकार का है।

६२९

ज्ञानी मधुकर के समान होते हैं।

६३०

ज्ञानी कभी खेद नही करते।

६३१

जैसे सिह मृगों में श्रेष्ठ होता है वैसे ही जनता मे बहुश्रुत व्यक्ति श्रेष्ठ होता है।

६३२

जैसे इन्द्र देवताओं का अधिपति होता है, वैसे ही विद्वान भी जनता में प्रमुख होता है।

६३३

श्रुतशास्त्र का अध्ययन करके उत्तम अर्थ की, मोक्ष की खोज करें।

६३४

जिणो जाणइ केवली

६३५

ना दंसणिस्स नाणं

६३६

नाणेण य मुणी होइ
तवेण होई तावसो

६३७

बुद्धा हु ते अंतकड़ा भवंति

६३८

दुविहे नाणे पच्चक्खे चेव परोक्खे चेव

६३९

नाणसंपन्नयाए जीवे
सव्व भावाहि गमं जणयइ

६४०

चउब्बिहा बुद्धी उप्पइया वेणइया
कम्मिया पारिणामिया

६३४

जिन रूप केवली ही सब कुछ जानते हैं।

६३५

सम्यक् दर्शन से रहित का सम्यग् ज्ञान नही होता है।

६३६

ज्ञान से ही मुनि होता है और, तप से ही तपस्वी होता है।

६३७

जो निश्चय में ज्ञानी है वे संसार का अन्त करने वाले होते है।

६३८

ज्ञान दो प्रकार का है प्रत्यक्ष और परोक्ष।

६३९

ज्ञान की संम्पन्नता से जीव सभी पदार्थों का ज्ञान उत्पन्न कर लेता है।

६४०

चार प्रकार की बुद्धि बतलाई गयी है औत्पातिकी, वैनयिकी कार्मिक और पारिणामिकी।

सम्यग्दर्शन

६४१

समत्तदंसी न करेइ पावं

६४२

नत्थि चरित्तं सम्मत्तविहूणं

६४३

नादंसणिज्ज नाणं नाणेण विणा न हुंति चरणगुणा
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो णत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं

६४४

तहियाणं तु भावाणं सब्भावे उवएसणं
भावेणं सद्दहन्तस्स सम्मत्तं तं वियाहियं

६४५

दसणेण य सद्दहे

६४६

नाणब्भट्ठा दंसण लूसिणो

६४७

वीरा सम्मत्त दंसिणो सुद्धं तेसि परक्कंतं

सम्यग्दर्शन

६४१

सम्यग्दर्शी साधक कभी पाप कर्म नही करता।

६४२

सम्यक्त्व के अभाव मे चारित्र नही हो सकता।

६४३

सम्यग्दर्शन के अभाव मे ज्ञान प्राप्त नही होता, ज्ञान के अभाव मे चारित्र के गुण नही आ सकते, गुणो के अभाव मे मोक्ष नही होता और मोक्ष के अभाव मे निर्वाण प्राप्त नही होता।

६४४

जिवादिक सत्य पदार्थों के अस्तित्व के विषय मे सद्गुरु के उपदेश से अथवा स्वय ही अपने भाव से श्रद्धा करना दर्शन कहा गया है।

६४५

दर्शन के अनुसार ही श्रद्धा रक्खो।

६४६

सम्यग् दर्शन से पतित हुआ प्राणी सम्यग्ज्ञान से भी भ्रष्ट ो जाता है।

६४७

ो वीर हैं और सम्यक्त्व दर्शी हैं, उन्हीं का पराक्रम शुद्ध है।

६४८

दंसण संपन्नयाए भव मिच्छत्तछेयणं करेई

६४९

सम्मद्दिट्ठी सया अमूढ़े

६५०

दिट्ठिमं दिट्ठि ण लूसएज्जा

६५१

चउव्वीसत्थएणं दंसणविसोहिं जययइ

६५२

दुविहे दंसणे सम्म दंसणे चेव
मिच्छा दंसणे चेव

६४८

र्शन की सम्पन्नता से सांसारिक मिथ्यात्व का छेदन होता है।

६४९

सम्यक् दृष्टि सदैव अमूढ़ होता है।

६५०

सम्यक् दृष्टि वाला अपनी दृष्टि को दूषित नहीं करे।

६५१

चोवीस तीर्थंकरों की स्तुति से सम्यक्त्व शुद्धी होती है।

६५२

दर्शन दो प्रकार का है सम्यक्त्व दर्शन और मिथ्यात्वदर्शन।

चारित्र

६५३

चरित्तेण निगिण्हाई

६५४

अगुणिस्स नत्थि मोक्खो

६५५

चरित्त संपन्नयाए सेलेसी भावं जणयई

६५६

एगे चरित्ते

६५७

विज्जा चरणं पमोक्खं

६५८

सामाइय माहु तस्स जं, जो अप्पाणं भए ण दंसए ।

चारित्र

६५३

साधक चारित्र से भोग वासनाओं का निग्रह करता है।

६५४

चारित्र हीन को मोक्ष नही मिलता।

६५५

चारित्र सम्पन्नता से जीवन मे निर्मल गुण पैदा होता है।

६५६

एक ही चारित्र है।

६५७

ज्ञान और चारित्र ही मोक्ष है।

६५८

जो अपनी आत्मा के लिए किसी भी प्रकार का भय नही देखता है, वही उसके लिए सामायिक कही गयी है।

वाणीविवेक

६५९

नो वयणं फरुस वइज्जा

६६०

राइणियस्स भासमाणस्सवा वियागरेमाणस्स
वा नो अंतरा भास भासिज्जा

६६१

अणणुवीइ भासी से निग्गन्थे

६६२

अणणुवीइ भासी से निग्गथे
समावइज्जामोसं वयणाए

६६३

अणुचिंतिय वियागरे

६६४

जं छन्नं तं न वत्तव्यं

६६५

तुमं तुमंति अमणुन्नं सव्वसो तं न वत्तए

वाणीविवेक

६५९
कठोर वचन न बोले ।

६६०
अपने से बडे गुरुजन जब बोलते हों विचार चर्चा करते हो तो उनके बीच मे न बोले ।

६६१
जो विचार पूर्वक बोलता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ है ।

६६२
जो विचार पूर्वक नही बोलता है, उसका वचन कभी असत्य से दूषित हो सकता है ।

६६३
जो कुछ बोले पहले विचार कर बोले ।

६६४
जो गोपनीय बात हो वह नही कहनी चाहिए ।

६६५
तूं तूं जैसे अभद्र शब्द कभी नही बोलने चाहिए ।

६६६
विभज्जवाय च वियागरेज्जा

६६७
निरुद्धगं वावि न दीहइज्जा

६६८
नाइवेलं वएज्जा

६६९
इमाइं छ अवयणाइं वदित्तए अलियवयणे हीलियवयणे खिंसितवयणे फरुसवयणे गारत्थिय वयणे विउसवित्तं वा पुणो उदीरित्तए

६७०
मोहरिए सच्चवयणस्स पलिमथू

६७१
जमटठंतु न जाणेज्जा एवमेयंति नो वए

६७२
जत्थशंकाभवे त तु एवमेयेति नोवए

६७३
न लवे असाहु साहुत्ति, साहुं साहुत्ति आलवे

६६६

विचार शील पुरुप सदा स्याद्वाद से युक्त वचन का प्रयोग करे।

६६७

थोडे मे कही जानी वाली वात को लम्वी न करे।

६६८

साधक आवश्यक्ता से अधिक न वोले।

६६९

छः तरह के वचन नही वोलने चाहिए, असत्यवचन, तिरस्कार युक्त वचन, झिड़कते हुए वचन, कठोर वचन, सावारण मनुष्यो की तरह अविचार पूर्णवचन, और शान्त हुए कलह को फिर से भडकाने वाले वचन।

६७०

वाचालता सत्य वचन का विघात करती है।

६७१

जिस वात को स्वयं न जानता हो उसके सम्वन्व में 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार निश्चित भापा न वोले।

६७२

जिस विपय मे अपने को शंका हो उसके विपय मे 'यह ऐसा ही है' इस प्रकार निश्चित भापा न वोले।

६७३

किसी भी प्रकार के दवाव व खुशामद मे अयोग्य को योग्य नहीं कहना चाहिए, योग्य को योग्य कहना चाहिए।

६७४

न हासमाणो वि गिरं वएज्जा

६७५

मियं अदुट्ठं अणुवीइ भासए
सयाण मज्झे लहई पसंसणं

६७६

वइज्ज बुद्धे, हिय माणुलोमियं

६७७

वायादुरुत्ताणि दुरुद्धराणि वेराणुबधीणि महब्भयाणि

६७८

न य कुग्गहियं कहं कहिज्जा

६७९

बहुयं माय आलवै

६८०

नापुट्ठो वागरे किंचि, पुट्ठो वा नालियं वए

६८१

वयगुत्तायाए णं णिव्विकारत्तं जणयइ

६७४

हसते हुए नही वोलना चाहिए ।

६७५

जो विचार पूर्वक सुन्दर व परिमित शब्द वोलता है, वह सज्जनो मे प्रशंसा पाता है ।

६७६

बुद्धिमान ऐसी भाषा वोले जो हितकारी, हो और सभी को प्रिय हो ।

६७७

वाणी से वोले हुए दुष्ट और कठोर वचन जन्म जन्मान्तर के वैर और भय के कारण वन जाते है ।

६७८

विग्रह वढाने वाली वात नही करनी चाहिए ।

६७९

वहुत नही वोलना चाहिए ।

६८०

विना वुलाए वीच मे कुछ नही वोलना चाहिए, वुलाने पर भी असत्य जैसा कुछ न कहे ।

६८१

वचन गुप्ति से निर्विकार स्थिति प्राप्त होती है ।

६८२

तहेव काणं काणेत्ति, पडगं पंडगे त्ति वा
वाहियं वा वि रोगि त्ति, तेणं चोरे त्ति नो वए

६८३

णातिवेलं वदेज्जा

६८४

न असब्भमाहु

६८५

अप्पं भासेज्ज सुव्वए

६८६

न लवेज्ज पुट्ठो सावज्जं

६८७

जं छन्नं त न वत्तव्वं

६८८

अणुचितिय वियागरे

६८९

भासमाणो न भासेज्जा

६९०

अपुच्छिओ न भासिज्जा

६८२

काने को काना, नपुंसक को नपुंसक, रोगी को रोगी, चोर को चोर कहना सत्य है पर ऐसा नही कहना चाहिए इससे उन व्यक्तियों को दुःख पहूंचता है।

६८३

लम्बे समय तक वार्तालाप नही करे।

६८४

असभ्यता के साथ मत बोलो।

६८५

सुव्रती अल्प ही बोले।

६८६

पूछने पर सावद्य न बोले।

६८७

जो गोपनीय हो उसे नही बोलना चाहिए।

६८८

गंभीर विचार करके बोले।

६८९

कोई दूसरा बोलता हो तो उसके बीच न बोले।

६९०

बिना पूछा हुआ नही बोले।

६६१

णेव वंफेज्ज मम्मयं

६६२

सत्तविहे वयण विकप्पे आलावे, अणालावे, उल्लावे, उणुल्लावे, सल्लावे, पलावे, विप्पलावे ।

६६३

चत्तारि भासाओ भासित्तए
जायणी, पुच्छणी, अणुन्नवणी, पुट्ठस्सवागरणी ।

६६४

मिअं भासे

६६१

मर्मघाती वाक्य नही बोले।

६६२

सात प्रकार का वचन विकल्प कहा गया है। १ थोड़ा बोलना २ कुत्सित बोलना। ३ मर्यादा उल्लंघन कर बोलना। ४ मर्यादा रहित बोलना। ५ परस्पर बोलना। ६ निरर्थक बोलना ७ विरुद्ध बोलना।

६६३

चार प्रकार की भाषा कही गयी है याचनिक पृच्छनिका अवग्राहिका और पृष्ठ व्याकरणिका।

६६४

परिमित बोले।

कर्म

६६५

कड़ाणकम्माण न मोक्खअत्थि

६६६

जमियं जगई पुढ़ोजगा, कम्मेहि लुप्पन्ति पाणिणो
सयमेव कडेहिं गाहई, णो तस्स मुच्चेज्जऽपुट्ठयं

६६७

सव्वे सयकम्मकप्पिया, अवियत्तेण दुहेण पाणिणो
हिण्ड़न्ति भयाउला सढ़ा, जाइ जरामरणेहिऽभिदुया

६६८

तम्हा एएसिं कम्माणं, अणुभागा वियाणिया
एएसिं संवरे चेव, खवणे य जए बुहो

६६९

तेणे जहा संधिमुहे गहीए, स कम्मुणा किच्चइ पावकारी
एवं पया पेच्च इंह च लोए कड़ाण कम्माण न मोक्खअत्

कर्म

६६५

किए हुए कर्मो को विना भोगे मुक्ति नही है।

६६६

सभी प्राणी अपने-अपने सचित कर्मों के कारण ही संसार मे आते-जाते है, और कर्मानुसार भिन्न-भिन्न योनियो मे पैदा होते हैं। क्योकि कर्म के भोगे विना जीव को छुटकारा नही मिलता।

६६७

प्राणिजन अपने-अपने कर्मो के अनुसार भिन्न-भिन्न योनियो को प्राप्त हुए हैं। कर्मों की अधीनता के कारण एकेन्द्रिय आदि की अवस्था में वे दु.खी रहते हैं। अशुभ कर्मों के कारण जन्म जरा और मरण से सदा भयभीत रह कर गतिचतुष्टय के रूप मे संसार में भटकते रहते हैं।

६६८

कर्मों के फल भोगने पड़ते हैं, ऐसा समझ कर नये कर्मों से क्रिया को रोकने के लिए तथा संचित कर्मों को क्षय करने के लिए बुद्धिमान पुरुष को सदा प्रयत्नशील रहना चाहिए।

६६९

जैसे पापात्मा चोर नकब लगाने के मौके पर पकड़ा जाकर अपने कर्म से मारा जाता है। ठीक वैसे ही इस लोक में एवं परलोक में कृतकर्मा आत्मा को कृत कर्म का फल भोगना पड़ता है। क्योंकि कृत कर्मों से कभी फंदा नही छूटता।

७००

रागो य दोसोऽविय कम्मबीयं

७०१

पदुट्ठ चित्तो यो चिणाइ कम्मं

७०२

कम्माणि बलवन्ति हि

७०३

कम्मं च मोहप्पभव

७०४

गाढ़ा य विवाग कम्मुणो

७०५

कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो

७०६

कम्मं च जाई मरणस्स मूलं

७०७

संसरइ सुहा सुहेहि कम्मेहिं

७०८

आहाकम्मेहिं गच्छई

७००

असत् कर्म के हेतु—राग और द्वेष हैं।

७०१

प्रदुष्ट चित्त ही असत कर्म को एकत्र करता है।

७०२

कर्म निश्चय ही वलवान हैं।

७०३

मोह ही से कर्मों का उदय होता है।

७०४

कर्मों का फल अत्यन्त प्रभाव कारी होता है।

७०५

प्राणिजन कर्मों से ही डूबते हैं।

७०६

जन्म और मरण का मूल कर्म ही है।

७०७

शुभ कर्मों से साता रूप सुख शान्ति फैलती है।

७०८

(आत्मा) अपने किये हुए कर्मों के अनुसार ही (परलोक) को जाता है।

७०९

कम्मुणा उवाही जायइ

७१०

इहं तु कम्माइं पुरे कड़ाइं

७११

असुहाण कम्मणिनिज्जाणं पावगं

७१२

कत्तार मेव अणुजाइ कम्मं

७१३

कम्मुणा तेण संजुत्तोगच्छई उ परंभवं

७१४

जहा कडं कम्म तहा से भारे

७१५

जं जारिसपुव्वमकासिकम्मं तमेव आगच्छति संपराए

७१६

कम्मी कम्मेहिं किच्चती

७१७

बाला वेदंति कम्माइं पुरे कड़ाइं

७०९

कर्म से उपाधियाँ (अनेक विपत्तियाँ) पैदा होती है ।

७१०

यहाँ पर जिन कर्मों को भोग रहे हो वे पहिले किए हुये हैं ।

७११

अशुभ कर्मों का मूल कारण पाप है ।

७१२

कर्म कर्ता का ही अनुगमन करता है ।

७१३

उस कर्म के साथ ही जीव परलोक को जाता है ।

७१४

जैसा कर्म किया है, वैसा ही उसका बोझ समझो ।

७१५

जिसने जैसा पूर्व जन्म मे कर्म किया है, वैसा ही ससार में उसको फल भोगना पड़ता है ।

७१६

कर्मी कर्मों से ही दुःख पाता है ।

७१७

सभी मनुष्य पूर्वार्जित कर्मों का फल भोगते हैं ।

७१८

सकम्मुणा विप्परियासुवेइ

७१९

आयाणिज्जं परिन्नाय परियाएण विगिंचइ

७२०

रयाइं खेवेज्ज पुराकडाइं

७१८

प्रत्येक आत्मा कर्मों के अनुसार अदलता-बदलता रहता है।

७१९

ज्ञानी आश्रव और बंध को समझ कर साधुता के रूप से उन्हे दूर रखता है।

७२०

पूर्वकृत कर्मों की रज को फेंक दो।

७१८

सकम्मुणा विप्परियासुवेइ

७१९

आयाणिज्जं परिन्नाय परियाएण विगिचइ

७२०

रयाइं खेवेज्ज पुराकड़ाइं

७१८

प्रत्येक आत्मा कर्मों के अनुसार अदलता-बदलता रहता है।

७१९

ज्ञानी आश्रव और वंध को समझ कर साधुता के रूप से उन्हें दूर रखता है।

७२०

पूर्वकृत कर्मों की रज को फेंक दो।

योग

७२२

पंच निग्गहणा धीरा

७२३

आयगुत्ते सयावीरे

७२४

भावणा जोग सुद्धप्पा
जलेणावा व आहिया

योग

७२२

जो पाचो इन्द्रियो का निग्रह करते है वही धीर पुरुष हैं।

७२३

जो वीर होता है वही मन वचन काय गुप्ति को नियंत्रण मे रखता है।

७२४

भावना के योग से शुद्ध आत्मा जल में नांव की तरह कहा गया है।

महापुरुष

७२५

सड़ढ़ो आणाए मेहाव।

७२६

विणियट्टंति भोगेसु जहा से पुरिसुत्तमो

७२७

वुद्धो भोगे परिच्चयई

७२८

मोहावी अप्पणो गिद्धिमुद्धरे

७२९

अणुन्नएनावणए महेसी

७३०

पंतं लूहं सेवंति वीरा समत्त देसिणो।

महापुरुष

७२५

जो भगवान की आज्ञा में विश्वास करता है वही महापुरुष है ।

७२६

जो भोगों से दूर रहते हैं वे ही श्रेष्ठ महापुरुष है ।

७२७

बुद्धिमान पुरुष ही भोगों को छोड़ता है ।

७२८

बुद्धिमान और आत्मार्थी पुरुष अपनी ममत्व बुद्धि को हटादे, यही महापुरुषों का पंथ है ।

७२९

महात्मा पुरुष न तो हर्ष से अभिमानपुरुष हो और न दुःख से दीन हो ।

७३०

सम्यग्दर्शी वीर पुरुष नीरस और निस्वाद भोजन का आहर करते है ।

अनित्यता

७३१

इमं सरीर अणिच्चं असुइ असुइं संभवं

७३२

असासया वासमिणं दुक्ख केसाण भायणं

७३३

अल्लीण गुत्तो निसिए।

७३४

अगुत्ते अणाणाए

७३५

अमणुन्न समुप्पायं दुक्खमेव

७३६

न सव्व सव्वत्थ अभिशेय एज्जा

अनित्यता

७३१

यह शरीर अनित्य है, अशुद्ध है और अशुद्धि से ही उत्पन्न हुआ है।

७३२

यह वास संयोग अशाश्वत् है और दुःख एवं क्लेशों का ही भाजन है।

७३३

गुरु आदि के आश्रित रहता हुआ गुप्ति धर्म का पालन करता हुआ बैठे।

७३४

अगुप्ति वाला आज्ञा से रहित होता है।

७३५

अमनोज्ञ की समुत्पत्ति ही दुःख है।

७३६

सब जगह किसी भी पदार्थ के प्रति ललायित मत हो।

तत्व स्वरूप

७३७

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा ।
वीरियं उवओगोय, एयं जोवस्स लक्खणं ॥

७३८

जीवाऽजीवा य बन्धोय, पुण्ण पावाऽ सवोतहा
संवरो निज्जरा मोक्खो, सन्तेए तहिया नव

७३९

सरीरं सादियं सनिधणं

७४०

जीवो णो वड्ढंति णो हायंति अवट्ठिया

७४१

नो य उप्पज्जए असं

७४२

करणओ सा दुक्खा नो खलु सा अकरणो दुक्खा

७४३

समुप्पायमजाणंता कहं नायंति संवरं

तत्त्व स्वरूप

७३७

ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, वीर्य और उपयोग ये सब जीव के लक्षण है।

७३८

जीव, अजीव, बन्ध, पुण्य, पाप, आश्रव, संवर, निर्जरा मोक्ष ये नो तत्व हैं।

७३९

शरीर का आदि भी है और अन्त भी है।

७४०

जीव न कभी बढते हैं और न कभी घटते है बल्कि सदा अवस्थित रहते है।

७४१

जो असत् है वह कभी सत् रूप में उत्पन्न नही होता।

७४२

कोई भी क्रिया किए जाने पर ही सुख दुःख का कारण बनती है, न किये जाने पर कभी नही।

७४३

जो दुखोत्पत्ति के कारण को नही समझता वह उस के निरोध का कारण कैसे जान सकेगा ?

मोक्ष

७४४

खेमं च सिवं अणुत्तरं

७४५

सुद्धेण उवेति मोक्खं

७४६

सव्व संग विनिम्मुक्को सिद्धे भवई नीरए

७४७

सिद्धो हवइ सासओ

७४८

अन्नाण मोहस्स विवज्जणाए
एगन्त खोक्खं समुवेइ मोक्खं

७४९

मोक्खसब्भूय साहणा नाणं च दंसणं चेव चरित्तं चेव

७५०

अगुणिस्स नत्थिमोक्खो

७५१

नत्थि अमोक्खस्स निव्वाण

मोक्ष

७४४

मोक्ष शिव स्वरूप है, और श्रेष्ठ है।

७४५

शुद्ध आत्मा मोक्ष को प्राप्त करती है।

७४६

सभी प्रकार के संग से विनिर्मुक्त होती हुयी सिद्ध आत्मा कर्म रहित हो जाती है।

७४७

सिद्ध प्रभु शाश्वत होते है।

७४८

अज्ञान रूपी मोह के विवर्जन से एकान्त मोक्ष सुख को प्राप्त करता हैं।

७४९

मोक्ष के सदभूत साधन ज्ञान दर्शन और चारित्र है।

७५०

अगुणी का मोक्ष नही है।

७५१

कर्मों से अमुक्त के लिए निर्वाण नही है।

७५२

ड़हरे य पाणे वुड़ढ़े य पाणे, ते अत्तओ पासइ सव्वलोए
उव्वेहइ लोगमिणं महन्तं, वुद्धो पमत्तेसु परिव्वएज्जा

७५३

जे अणण्णारामे से अणत दंसो

७५४

अरइं आउट्टे से मेहावि खवंसि मुक्के

७५५

आयाणं निसिद्धा सगब्भि

७५६

पच्छावित्ते पयाया खिप्पं गच्छन्ति अमरभवणाइं।
नेसिंपिओ तवोसंजमो य, खंति अ बंभ चेरं च॥

७५७

नाणं च दंसणं चेव चरित्तं च तवो तहा,
एस मग्गुत्ति पण्णत्तो, जिणेहिं वरं दरिसिहि।

७५८

विगिंच कम्मणो हेऊँ जस संचिणु खंतिए,
सरीर पाढ़वं हिच्चा उड्ढ पकमई दिस।

७५२

जो संसार के सब प्राणियों को आत्मवत् देखता है, संसार को अशाश्वत समझता है और अप्रमत्त भाव से संयम में रहता है वही मोक्ष का अधिकारी है।

७५३

जो साधक मोक्ष के अतिरिक्त कही भी रूची नही रखता वही अटल श्रद्धा वाला माना गया है।

७५४

जो साधक अरति को दूर रखता है, वह क्षण भर मे मुक्त हो जाता है।

७५५

भावि कर्मो का आश्रव रोकने वाला साधक पूर्व संचित कर्मों का भी क्षय कर देता है।

७५६

जो ढलति हुयी उम्र में भी संयम के मार्ग मे चल पड़ते है, और तप संयम क्षमा तथा ब्रह्मचर्य को प्रिय समझ कर उनमें रमण करते हं, वे भी अमरत्व को प्राप्त हो जाते है।

७५७

सर्वदर्शी ज्ञानियों ने ज्ञान दर्शन चारित्र और तप को ही मोक्ष का मार्ग बतलाया है।

७५८

कर्म बन्ध के कारणो को ढूंढ़ो, उनका छेद करो, और फिर क्षमादि के द्वारा अक्षय यश का संचय करो साधक पार्थिव शरीर को छोड़कर सद्‌गति को प्राप्त करता है।

७५९

नादंसणिस्स नाणं नाणेण विणा न हुंति चरण गुणा,
अगुणिस्स नत्थि मोक्खो, नत्थि अमोक्खस्स निव्वाणं।

७६०

जयासंवर मुक्किट्ठं धम्मं फासे अणुत्तरं,
तया धुणइ कम्मरयं अबोहि कलुस कड।

७६१

जया जोगे निरुंभित्ता सेलेसिं पडिवज्जई,
तया कम्मं खवित्ताणं सिद्धि गच्छइ नीरओ।

७६२

जयाकम्मं खवित्ताणं सिद्धि गच्छई नीरओ,
तया लोगमत्थयत्थो सिद्धो हवइ सासओ।

७६३

छिंदिज्ज सोयं लहुभूयगामी

७५६

श्रद्धा हीन को ज्ञान नही होता है, ज्ञान हीन को आचरण नही होता आचरण हीन को मोक्ष नही मिलता, और मोक्ष पाये विना निर्वाण-पूर्ण शान्ति नही मिलती।

७६०

जव साधक उत्कृष्ट एवं अनुत्तर धर्म का स्पर्श करता है, तव आत्मा पर से अज्ञान कालिमा जन्य कर्म रज को झाड़ देता है।

७६१

जव मन. वचन और शरीर के योगो का निरोध कर आत्मा शैलेशी अवस्था को पाती है पूर्णतः स्पन्दन रहित हो जाती है तव कर्मो का क्षय कर सर्वथा मल रहित होकर मोक्ष को प्राप्त होता है।

७६२

जव आत्मा समस्त कर्मो का क्षय कर सर्वथा मल रहित होकर मोक्ष को पा लेती है, तव लोक के अग्रभाग पर स्थित होकर सदा के लिए सिद्ध हो जाति है।

७६३

शीघ्र ही मोक्ष में जाने की इच्छा रखने वाला साधक संताप को दूर रखे।

भिक्षाचरी

७६४

जहा दुमस्स पुप्फेसु, भमरो आवियइ रसं ।
ण य पुप्फ किलामेइ, सोय पीणेइ अप्पयं ।।

७६५

एमे ए समणा मुत्ता, जे लोए संति साहुणो ।
विहं गमा व पुप्फेसु, दाणभत्ते सणे रया ।।

७६६

अलाभुत्ति न सोएज्जा, तवोत्ति अहियासए

७६७

समुयाणं चरे भिक्कू कुलमुच्चावयं सया ।
नीय कुलमइक्कम्मं, ऊसढं नाभिधारए ।।

७६८

न चरेज्ज वासे वासंते महियाए वा पडंतिए ।
महावाए व वायंते तिरिच्छ सपाइमेसुवा ।।

७६९

अलद्धुयं नो परिदेव एज्जा
लद्धु न विकत्थयई स पुज्जो

७७०

महुघयं व भुंजिज्ज संजए

७७१

भारस्स जाआ मुणि भुज्जएज्जा

७७२

पक्खी पत्तं समादाय निरवेक्खो परिव्वए

७७३

न रसट्ठाए भुंजिज्जा जवणट्ठाए महामुणी

७६९

भिक्षा न मिलने पर जो खेद प्रकट नहीं करता और मिलने पर प्रशंसा नही करता, वह पूज्य है।

७७०

सरस या निरस जैसा भी आहार समय पर उपलब्ध होजाय, साधक उसे 'मधुघृत' की तरह प्रसन्न चित्त से खाए।

७७१

मुनि संयम निर्वाह के लिए आहार ग्रहण करे।

७७२

मुनि पक्षी की भाती कल की अपेक्षा न रखता हुआ पात्र लेकर भिक्षा के लिए परिभ्रमण करे।

७७३

मुनि स्वाद के लिए न खाए, बल्कि जीवन निर्वाह के लिए खाए।

उपदेश

७७४

भूएहिं न विरुज्झेज्जा

७७५

मियं कालेणभक्खए

७७६

जं सेयं तं समायरे

७७७

कंखे गुणे जाव सरीर भेउ

७७८

जं किच्चाणिव्वुड़ा एगे निट्ठं पावंति पंड़िया

७७९

कालेकालं समायरे

७८०

दिट्ठेहिं निव्वेयं गच्छिज्जा

७८१

अच्चे ही अणुसास अप्पयं

उपदेश

७७४

प्राणियों के साथ वैरभाव मत रक्खो।

७७५

समयानुसार परिमित भोजन करो।

७७६

जो कल्याणकारी है उसीका आचरण करो।

७७७

शरीर समाप्ती के अन्तिम क्षण तक भी गुणो की आकाक्षा करते रहो।

७७८

सत् आचरण को करके अनेक निवृत्त हुए हैं। उसी आधार से पण्डित सिद्धि को प्राप्त करते है।

७७९

काल क्रम के अनुसार ही जीवन व्यवहार को चलावे।

७८०

विरोधी उपदेशों से उदासीनता ग्रहण करलो।

७८१

त्यागी अपनी आत्मा को अनुशासित करें।

७८२

पिय मपियं कस्सइ णो करेज्जा

७८३

सोयं परिण्णायचरिज्जदेते

७८४

जं मयं सव्व साहूणं तं मयं सल्ल गत्तणं

७८५

तमेव सच्च नीसंक जं जिणेहिं पवेइय

७८६

वण्णजरा हरइ नरस्स

७८७

जरोवणीयस्स हु नत्थि ताणं

७८८

न सिया तोत्त गवेसए

७८९

दव दवस्स न गच्छेज्जा

७९०

अकप्पियं न गिण्हिज्जा

७८२

प्रिय अप्रिय सभी शांतिपूर्वक सहन करो।

७८३

संयमी निरवद्य आचारका ज्ञान करे तदनुसार आचरण करें।

७८४

जो सिद्धान्त सभी साधुओं द्वारा मान्य है वही सिद्धान्त शल्य को छेदने वाला है।

७८५

सत्य और निःशंक उसी को समझो जो कि वीतराग देव द्वारा कहा गया है।

७८६

बुढापा मनुष्य के वर्ण को हरण कर लेता है।

७८७

बुढापे को प्राप्त हुए जीव के लिए निश्चय ही रक्षा का साधन नही है।

७८८

पर छिद्रो के ढूंढ़ने वाले मत बनो।

७८९

जल्दी जल्दी धव धव करके नही चले।

७९०

अकल्पनीय ग्रहण नही करें।

७९१

सव्वत्थ विरति कुन्जा

७९२

अज्जाइं कम्माइं करेहि

७९३

रस गिद्धे न सिया

७९४

कुम्मुव्व अलीण पलीण गुत्तो

७९५

हसंतो नाभिगच्छेज्जा

७९६

निव्वाणं संघए मुणि

७९७

अणुसासण मेव पक्कमे

७९८

छिन्न सोए अममे अकिंचणे

७९९

संकट्ठाणं विवज्जए

८००

खणं जाणाहि पण्डिए

७६१

सब जगह संवर का आचरण करो।

७६२

श्रेष्ठ कामो को करो।

७६३

रस में गृद्ध वाले मत बनो।

७६४

गुरु आदि के आश्रय में रहता हुआ कछुए के समान अपनी इन्द्रियों को और मन को सयम मे रखने वाला बने।

७६५

हंसता हुआ नहीं चले।

७६६

मुनि निर्वाण को ही साधे।

७६७

भगवान की आज्ञा मे ही प्राक्रम शील हो।

७६८

आत्मार्थी छिन्न शोक वाला, ममता रहित और अकिंचन धर्म वाला होवे।

७६९

शंका के स्थान को छोड़ दो।

८००

हे आत्मज्ञ! समय के मूल्य को पहचानो।

देवेन्द्र मुनि, शास्त्री

सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा–२

डॉ० कपिलदेव द्विवेदी की नई कृति

संस्कृत-व्याकरण

- बी० ए० और एम० ए० कक्षाओं में निर्धारित समस्त व्याकरण इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किया गया है।
- सम्पूर्ण लघुकौमुदी हिन्दी-माध्यम द्वारा अत्यन्त सरल एवं सुबोध रूप में दी गई है।
- विदेशी भाषाओं में व्याकरण के अध्ययन को सरल एवं रुचिकर बनाने के लिए जो पद्धति अपनाई गई है, उसका ही उपयोग इस पुस्तक में किया गया है।
- सिद्धान्त-कौमुदी से सम्पूर्ण कारक-प्रकरण विस्तृत व्याख्या-सहित इसमें प्रस्तुत किया गया है।
- वैदिक-व्याकरण का अत्युपयोगी अंश भी इस पुस्तक में दिया गया है। साथ ही वैदिक और संस्कृत-व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। वैदिक छन्दों का परिचय भी सरल रूप में दिया गया है।
- प्राकृत-व्याकरण का आवश्यक और उपादेय विवरण भी इस पुस्तक में दिया गया है।
- व्याकरण के पारिभाषिक शब्दों का शब्द-कोश भी प्रस्तुत किया गया है।
- व्याकरण-शास्त्र के उद्भव और विकास का इतिहास विस्तार से दिया गया है।

पृष्ठसंख्या—४९२ (डिमाई) मूल्य—१२.५०

विश्वविद्यालय प्रकाशन, वाराणसी

७९१

सव्वत्थ विरति कुन्जा

७९२

अज्जाइं कम्माइं करेहि

७९३

रस गिद्धे न सिया

७९४

कुम्मुव्व अलीण पलीण गुत्तो

७९५

हसंतो नाभिगच्छेज्जा

७९६

निव्वाणं संघए मुणि

७९७

अणुसासण मेव पक्कमे

७९८

छिन्न सोए अममे अकिंचणे

७९९

संकट्ठाणं विवज्जए

८००

खणं जाणाहि पण्डिए

७९१

सब जगह संवर का आचरण करो।

७९२

श्रेष्ठ कामों को करो।

७९३

रस मे गृद्ध वाले मत बनो।

७९४

गुरु आदि के आश्रय में रहता हुआ कछुए के समान अपनी इन्द्रियों को और मन को संयम मे रखने वाला बने।

७९५

हंसता हुआ नही चले।

७९६

मुनि निर्वाण को ही साधे।

७९७

भगवान की आज्ञा मे ही पराक्रम शील हो।

७९८

आत्मार्थी छिन्न शोक वाला, ममता रहित और अकिंचन धर्म वाला होवे।

७९९

शंका के स्थान को छोड़ दो।

८००

हे आत्मज्ञ! समय के मूल्य को पहचानो।

७९१

सव्वत्थ विरति कुज्जा

७९२

अज्जाइं कम्माइं करेहि

७९३

रस गिद्धे न सिया

७९४

कुम्मुव्व अलीण पलीण गुत्तो

७९५

हसंतो नाभिगच्छेज्जा

७९६

निव्वाणं संघए मुणि

७९७

अणुसासण मेव पक्कमे

७९८

छिन्न सोए अममे अकिंचणे

७९९

संकट्ठाणं विवज्जए

८००

खणं जाणाहि पण्डिए

७९१

सब जगह संवर का आचरण करो।

७९२

श्रेष्ठ कामो को करो।

७९३

रस मे गृद्ध वाले मत बनो।

७९४

गुरु आदि के आश्रय मे रहता हुआ कछुए के समान अपनी इन्द्रियों को और मन को संयम मे रखने वाला बने।

७९५

हंसता हुआ नही चले।

७९६

मुनि निर्वाण को ही साधे।

७९७

भगवान की आज्ञा मे ही पराक्रम शील हो।

७९८

आत्मार्थी छिन्न शोक वाला, ममता रहित और अकिंचन धर्म वाला होवे।

७९९

शंका के स्थान को छोड़ दो।

८००

हे आत्मज्ञ ! समय के मूल्य को पहचानो।

प्रशस्त

८०१

नो लोगस्सेसणं चरे

८०२

बुद्धा धम्मस्स पारगा

८०३

आणाए अभिसमेच्चा अकुओभयं

८०४

आवट्ट सोए संग मभिजाणाई

८०५

भाव विसोहीए निव्वाण मभिगच्छई

८०६

संघ पाउमस्सभद्दं समणगण सहस्स पत्तस्स

स्नेह सूत्र

८०७

स्नेह पाश में बंधे हुए मुनि की स्वजन उसी तरह चोकसी रखते हैं जिस तरह नए पकड़े हुए हाथी की ।

८०८

माता, पिता, आदि का स्नेह सम्बन्ध छोड़ना उसी तरह कठिन है जिस तरह समुद्र को पार करना ।

८०९

मुनि संसर्ग को संसार का कारण समझ कर उसका परित्याग कर देवें ।

८१०

पूर्व संयोगो को छोड़कर फिर किसी भी वस्तु में स्नेह न करें ।

८११

जैसे शरद्ऋतु का कुमुद जल में लिप्त नही होता, वैसे तूं भी अपने स्नेह को छोड़कर निर्लिप्त बन ।

८१२

जो तेरे से स्नेह करता है, उससे भी तूं नि.स्नेह भाव से रह ।

८१३

स्नेह के बन्धन भयंकर हैं ।

स्नेह सूत्र

८०७

निबद्धो नाइ संगेहिं हत्थी वा वि नवग्गेहे ।

८०८

ए ए संगा मणूसाणं पायाला व अतारिमा ।

८०९

तं च भिक्खू परिन्नाय सव्वे संगा महासवा ।

८१०

विजहित्तु पुव्वसंजोग न सिणेह कहंचि कुबिज्जा ।

८११

वोच्छिंद सिणेहमप्पणो कुमुअं सारईयं व पाणियं ।

८१२

असिणेह सिणेह करेहि ।

८१३

नेहपासा भयंकरा ।

अज्ञान

८१४

मोहाच्छन्न अज्ञानी साधक सकट आने पर, धर्म शासन की अवज्ञा कर फिर ससार की ओर लोट पड़ते है।

८१५

अज्ञानी साधक जब कभी असत्य विचारो को सुन लेता है तो वह उन्ही मे उलझ कर रह जाता है।

८१६

अज्ञानी का संग नही करना चाहिए।

८१७

अज्ञानी सदा सोये रहते है और ज्ञानी सदा जागते रहते है।

८१८

यह समझ लिजीए कि ससार मे अज्ञान तथा मोह ही अहित और दुःख करने वाले है।

८१९

अधा अधे का पथ प्रदर्शक बनता है तो वह अभीष्ट मार्ग से दूर भाग जाता है।

८२०

अज्ञानी साधक उस जन्मान्ध व्यक्ति के समान है जो सछिद्र नौका पर चढकर नदी किनारे पहुँचना तो चाहता है पर किनारा आने के पहले ही प्रवाह मे डूब जाता है।

अज्ञान

८१४

अणाणाय पुट्ठा वि एगे नियंट्टंति
मदा मोहेण पाउड़ा

८१५

वितहं पप्पऽखेयन्ने तम्मि ठाणम्मि चिट्ठइ ।

८१६

अल बालस्स संगेणं

८१७

सुत्ता अमुणी मुणिणो सया जागरन्ति

८१८

लोयंसि जाण अहियाय दुक्खं

८१९

अंधो अंधं पहं णितो दूरमद्धाणुगच्छइ

८२०

जहा अस्साविणिं णावं जाइअंधो दुरुहिया
इच्छइ पारमागंतु अंतराय विसीयई

८२१

अज्ञानी आत्मा पाप करके भी उस पर अंहकार करता है।

८२२

जो अज्ञान के कारण पथभ्रष्ट होगया है उसे फिर भविष्य में संबोधि मिलना कठिन है।

८२३

अज्ञानी आत्मा क्या करेगा ? वह पुण्य और पाप को कैसे जान पाएगा ?

८२४

जो न जीव और अजीव को जानता है वह संयम को कैसे जान पाएगा ?

८२५

जितने भी अज्ञानी तत्व वोध हीन पुरुष हैं, वे सव दुःख के पात्र है। इस अनन्त संसार मे वे मूढ़ प्राणी वार-वार विनाश को प्राप्त होते रहते है।

८२६

अज्ञानी जीव विवश हुए अंधकाराच्छन्न आसुरी गति को प्राप्त होते हैं।

८२१

बाले पापेहि मिज्जती

८२२

इओ विद्धं समाणस्स पुणो संबोही दुल्लभा

८२३

अन्नाणि किं काही किं वा नाहो सेय पावग

८२४

जीवाजीवे अयाणंतो कहं सो नाही संवरं ?

८२५

जावंतड विज्जापुरिसा सव्वे ते दुःख संभवा
लुप्पति बहूसो मूढ़ा संसारम्मि अणंतए

८२६

आसुरीयं दिसं बाला गच्छति अवसातमं

अप्रमाद

८२७

जो प्रमत्त है विषयासक्त हैं वह निश्चित ही जीवो को दण्ड देने वाले होते हैं।

८२८

मेधावी साधक को आत्मज्ञान द्वारा यह निश्चय करना चाहिए कि मैंने पूर्व जीवन मे प्रमाद वश जो कुछ भूले की है वे अब कभी नही करूंगा।

८२९

अनन्त जीवन प्रवाह में मानव जीवन को बीच का एक सुअवसर जान कर धीर साधक मुहूर्त भर के लिए भी प्रमाद न करे।

८३०

बुद्धिमान साधक को अपनी साधना में प्रमाद नही करना चाहिए।

८३१

प्रमत्त को सब ओर भय रहता है अप्रमत्ता को किसी ओर भी भय नही रहता है।

८३२

उठो प्रमाद मत करो।

८३३

प्रमाद को कर्म, आश्रव और अप्रमाद को अकर्म, संवर कहा है।

अप्रमाद

८२७
जे पमत्ते गुणट्ठिए से हु दंडे त्ति पवुच्चति

८२८
तपरिण्णाय मेहावी इयाणिं णो
जमहं पुवमकासी पमाएणं

८२९
अंतर च खलु इमं संपेहाए
घोरे मुहुत्तमविणो पमायए

८३०
अलं कुसलस्स पमाएणं

८३१
सव्वओ पमत्तस्स भयं
सव्वओ अपमत्तस्स नत्थि भयं

८३२
उट्ठिए नो पमायए

८३३
पमायं कम्ममाहंसु अप्पमायं तहावर

८३४

चतुर वही है जो कभी प्रमाद न करे,

८३५

आत्म-साधना मे अप्रमत्त रहने वाले साधक न अपनी हिंसा करते हैं न दूसरो की वे सर्वथा अनारभ अहिसक रहते हैं।

८३६

सदा अप्रमत्तभाव से साधना मे यत्न शील रहना चाहिए

८३७

समय बड़ा भयकर और इधर प्रतिक्षण जीर्ण शीर्ण होता हुआ, शरीर है अत. अप्रमत्त होकर मांरड़पक्षी की तरह विचरण करना चाहिए ।

८३८

जागृत साधक प्रमादी के बीच भी सदा अप्रमादी रहता है ।

८३९

धीर ! एक मुहूर्त्त का भी प्रमाद मत कर, तेरी आयु बीत रही है और यौवन ढल रहा है ।

८४०

हे गौतम ! क्षणमात्र का प्रमाद मतकर ।

८४१

जीवन क्षणभगुर है अतः क्षणभर भी प्रमाद मत करो ।

८४२

प्रमादी धन के द्वारा अपनी रक्षा नही कर सकता ।

८३४

जे छेय से विप्पमायं न कुज्जा

८३५

जे ते अप्पमत्ते संजया ते णं नो आयारंभा,
नो परारंभा जाव अणारंभा।

८३६

अप्पमत्तो जये निच्चं

८३७

घोरा मुहुत्ता अबलं सरीरं भारंड पक्खीव चरेऽप्पमत्ते

८३८

सत्तेसुयावि पड़िबुद्ध जीवी

८३९

धीरो मुहुत्तमपिणो पमायए
वओ अच्चेइ जोव्वणं च

८४०

समयं गोयम मा पमायए

८४१

असंखयं जीवियं मा पमायए

८४२

वित्तेण ताणं न लभे पमत्ते

८३४

चतुर वही है जो कभी प्रमाद न करे,

८३५

आत्म-साधना मे अप्रमत्त रहने वाले साधक न अपनी हिंसा करते हैं न दूसरो की वे सर्वथा अनारभ अहिसक रहते हैं।

८३६

सदा अप्रमत्तभाव से साधना मे यत्न शील रहना चाहिए।

८३७

समय वड़ा भयकर और इधर प्रतिक्षण जीर्ण शीर्ण होता हुआ, शरीर है अतः अप्रमत्त होकर भांरड़पक्षी की तरह विचरण करना चाहिए।

८३८

जागृत साधक प्रमादी के वीच भी सदा अप्रमादी रहता है।

८३९

धीर ! एक मुहुर्त्त का भी प्रमाद मत कर, तेरी आयु वीत रही है और यौवन ढल रहा है।

८४०

हे गौतम ! क्षणमात्र का प्रमाद मतकर।

८४१

जीवन क्षणभंगुर है अतः क्षणभर भी प्रमाद मत करो।

८४२

प्रमादी धन के द्वारा अपनी रक्षा नही कर

८४३

विप्पमायं न कुज्जा

८४४

जीवो पमाय बहुलो

८४५

नाणी नो पमाए कयाइ वि

८४६

अप्पाण रक्खी चरे अप्पमत्तो

८४७

से यं खु मेयं ण पमोय कुज्जा

८४३

प्रमाद मत करो।

८४४

स्वभाव से ही जीव बहुत प्रमादी है।

८४५

ज्ञानी कभी भी प्रमाद नही करे।

८४६

अपनी आत्मा की रक्षा करने वाला अप्रमादी होता हुआ विचरे।

८४७

इसमे मेरा ही कल्याण है ऐसा विचार कर प्रमाद का सेवन न करे।

अनासक्ति

८४८

आसं च छंदं च विगिच धीरे, तुमं चेव सल्लमाहट्टु

८४९

जहा जुन्नाइं कट्ठाइं हव्ववाहो
पमत्थइ एव अत्त समाहिए अणिहे

८५०

सव्वत्थ भगवया अनियाणया पसत्था

८५१

कामे कमाही कमियं खु दुक्खं

८५२

असंसत्तं पलोइज्जा

८५३

कन्नसोक्खेहि सद्देहिं पेमं नाभिविवेसए

८५४

इह लोए निप्पिवासस्स नत्थि किचि वि दुक्करं

अनासक्ति

८४८

हे धीर पुरुष ! आशा, तृष्णा और स्वच्छन्दता का त्याग कर। तू स्वयं ही इन काटो को मन में रखकर दुःखी हो रहा है।

८४९

जिस प्रकार अग्नि पुराने सूखे काष्ठ को शीघ्र ही भस्म कर डालती है, उसी तरह सतत अप्रमत्त रहने वाला साधक कर्मों को कुछ ही क्षणों मे क्षीण करदेता है।

८५०

भगवान ने सर्वत्र निष्कामता को श्रेष्ठ बतलाया है।

८५१

कामनाओ को दूर करना ही दुःखो को दूर करना है।

८५२

किसी भी वस्तु को ललचाही आखो से न देखें।

८५३

केवल कर्णप्रिय तथा तथ्यहीन शब्दो मे अनुरक्ति नही रखनी चाहिए।

८५४

जो व्यक्ति संसार की तृष्णा से रहित है उसके लिए कुछ भी कठिन नही है

मनोनिग्रह

८५५

नो उच्चावयं मणं नियंछिज्जा

८५६

मणं परिजाणइ से निग्गथे

८५७

अदीण मणसो चरे

८५८

संकाभिओ न गच्छेज्जा

८५९

मणोसाहस्सिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई
तं सम्मं तु निगिण्हामि धम्मं सिक्खाइ कन्थगं

८६०

मणगुत्तयाएणं जीवे एगग्गं जणयइ

मनोनिग्रह

८५५

संकट में मन को ऊँचा नीचा अर्थात् डांवाडोल नही होने देना चाहिए ।

८५६

जो अपने मन को अच्छी तरह से परखना जानता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ साधु है ।

८५७

ससार में अदीन भाव से रहना चाहिए ।

८५८

जीवन मे भयभीत होकर मत चलो ।

६५९

यह मन बड़ा ही साहसिक भयंकर दुष्ट घोड़ा है जो बडी तेजी के साथ दौड़ता रहता है । मैं धर्मशिक्षा रूप लगाम से उस घोड़े को अच्छी तरह से वश मे किए रहता हूँ ।

८६०

मनोगुप्तता से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता है ।

मनोनिग्रह

८५५

नो उच्चावयं मणं नियंछिज्जा

८५६

मणं परिजाणइ से निग्गंथे

८५७

अदीण मणसो चरे

८५८

संकाभिओ न गच्छेज्जा

८५९

मणोसाहस्सिओ भीमो दुट्ठस्सो परिधावई
तं सम्मं तु निगिण्हामि धम्मं सिक्खाइ कन्थगं

८६०

मणगुत्तयाएणं जीवे एगग्गं जणयइ

मनोनिग्रह

८५५

संकट में मन को ऊँचा नीचा अर्थात् डांवाडोल नही होने देना चाहिए ।

८५६

जो अपने मन को अच्छी तरह से परखना जानता है, वही सच्चा निर्ग्रन्थ साधु है ।

८५७

ससार मे अदीन भाव से रहना चाहिए ।

८५८

जीवन में भयभीत होकर मत चलो ।

६५९

यह मन बडा ही साहसिक भयंकर दुष्ट घोड़ा है जो बड़ी तेजी के साथ दौड़ता रहता है । मै धर्मशिक्षा रूप लगाम से उस घोड़े को अच्छी तरह से वश मे किए रहता हूँ ।

८६०

मनोगुप्तता से जीव एकाग्रता को प्राप्त होता है ।

रागद्वेष

८६१

दुविहे वंधे, पेज्जबंधे चेव दोस वंधे चेव

८६२

रागोय दोषोय बिय कम्मबीय कम्मं च मोहप्पभवं वयंति
कम्मं च जाइमरणस्समूलं दुःक्खं च जाइमरणं वयंति

८६३

रागस्स हेऊँ समणुन्नमाहु दोसस्स हेऊँ अमणुन्नमाहु

८६४

पेज्जवत्तिया मुच्छा दुविहा माए चेव लोहे चेव

८६५

वेराणुबंधीणिभयऽभयाणि

८६६

छिंदाहि दोसं विणएज्जरागं

८६७

रागदोसा दओतिव्वा नेहपाया भयंकरा

रागद्वेष

८६१

बन्धन दो प्रकार के हैं, प्रेम का बन्धन और द्वेष का बन्धन।

८६२

राग और द्वेष ये दोनों कर्म के बीज है। कर्म मोह से उत्पन्न होता है, कर्म ही जन्ममरण का मूल है, और जन्म मरण ही वस्तुतः दुःख है।

८६३

मनोज्ञ शब्द आदि राग के हेतु होते है, और अमनोज्ञ द्वेष के हेतु है।

८६४

रागवृत्ति से सम्बन्धित मूर्च्छा दो प्रकार की है, माया सम्बन्धी और लोभ सम्बन्धी।

८६५

वैर का अनुबंध महान् भय वाला होता है।

८६६

द्वेष को काट डालो और राग को हटादो।

८६७

रागद्वेष आदि मोहपाश तीव्र है और भयंकर है।

पापपुण्य

८६८

पावोगहा हि आरंभा दुक्खफासाय अंतसो

८६९

इहलोगे सुचिन्नाकम्मा इहलोगे
सुहफलविवागसंजुत्ताभवति
इहलोगे सुचिन्ना कम्मा परलोगे
सुहफल विवाग संजुत्ताभवंति

८७०

सव्वं सुचिण्णं सफलं नराणं

८७१

पावाउ अप्पाण निवट्टएज्जा

८७२

पिहियासव्वस्ससदंतस्स, पाव कम्मं न बंधइ

८७३

पावकम्मं, नेव कुज्जा न कारवेज्जा

८७४

पावाइं मेहावी अज्झप्पेण समाहरे

पापपुण्य

८६८

पापानुष्ठान अन्ततः दुःख ही देते है।

८६९

इस जीवन में किए हुए सत्कर्म इस जीवन में सुखदायी होते है और इस जीवन मे किए हुए सत्कर्म अगले जीवन मे भी सुखदायी होते हैं।

८७०

मनुष्य के सभी सत्कर्म सफल होते है।

८७१

पाप से आत्मा को लौटादो।

८७२

जिसने आश्रव को रोक दिया है, और जो इन्द्रियों का दमन करने वाला है उसके पाप कर्म नही बंधा करते है।

८७३

पापकर्म न तो करे न करावें।

८७४

मेधावी आत्मा ध्यान द्वारा ही पापों को दूर कर देता है।

मानव जीवन

८७५

तओठाणाइं देवे पिहेज्जा माणुस्सं भवं
आरिएखेत्ते जम्मं सुकुलपच्चायांति

८७६

चत्तारि परमंगाणि, दुल्लहाणीह जन्तुणो
माणुसत्तं सुइ श्रद्धा, संजमम्मिय वीरियं

८७७

माणुसत्तं भवे मूलं, लाभो देवगइ भवे
मूलच्छेयेण जीवाणं, नरकतिरिक्खत्तणं धुवं

८७८

दुल्लहे खलु माणुस्से भवे

८७९

जीवा सोहि मणुप्पत्ता आययंति मणुस्सयं

८८०

पुव्वकम्मखयट्ठाए, इमं देह समुद्धरे

मानव जीवन

८७५

देवता भी तीन बातों को चाहते हैं—मनुष्य जीवन, आर्य क्षेत्र में जन्म और श्रेष्ठ कुल की प्राप्ति ।

८७६

इस संसार मे मानव को चार अंग मिलने अत्यन्त कठिन हैं मनुष्यत्व, धर्म का सुनना, सम्यक् श्रद्धा और संयम मे पुरुषार्थ ।

८७७

मनुष्य जीवन मूल धन है, देवगति उसमे लाभ है, मूल धन के नाश होने पर नरक तिर्यञ्च गति रूप हानि होती है ।

८७८

मनुष्य जन्म निश्चय ही बडा दुर्लभ है ।

८७९

संसार मे आत्माएं क्रमश. विकाश को प्राप्त करते करते मनुष्य भव को प्राप्त करती हैं ।

८८०

पूर्व संचित कर्मो के क्षय के लिए ही यह देह धारण करनी चाहिए ।

अभय

८८१
दाणाण सेट्ठं अभयप्पयाणं

८८२
ण भाइयव्वं भीतं खु भया अइंति लहुयं

८८३
भीतो अबितिज्जओमणुस्सो

८८४
भीतो भूतेहिं घिप्पइ

८८५
भीतो अन्नं पि हु भेसेज्जा

८८६
भीतो तव संजमं पि हु मुएज्जा
भीतो य भरं न नित्थरेज्जा

८८७
न भाइयव्वं भयस्स वा वाहिस्स वा
रोगस्स वा जराए वा मच्चुस्स वा

८८८
दाणाणं चेव अभय दाणं

अभय

८८१

दानों में श्रेष्ठ अभय दान है।

८८२

भय से डरना नही चाहिए। भयभीत मानव के पास भय शीघ्र आते हैं।

८८३

भयभीत मनुष्य किसी का सहायक नहीं हो सकता।

८८४

भयाकुल मानव ही भूतो का शिकार होता है।

८८५

स्वयं ड़रा हुआ व्यक्ति दूसरों को ड़रा देता है।

८८६

भयभीत व्यक्ति तप और सयम की साधना छोड़ बैठता है भयभीत किसी भी दायित्व को निभा नही सकता है।

८८७

आकस्मिक भय से, व्याधि से, रोग से, बुढापे से और तो क्या मृत्यु से भी कभी डरना नही चाहिए।

८८८

सब दानों में अभय दान श्रेष्ठ है।

अधर्म

८८९

अहम्मं कुणमाणस्स
अफला जन्ति राइओ

८९०

पड़न्ति नरए घोरे जे नरा पावकारिणो

८९१

असंसत्तं पलोइज्जा

८८९

अधर्म कार्य करने वाले की रात्रियां निष्फल ही जाती हैं ।

८९०

जो मनुष्य पाप कारी हैं वे घोर नरक में पड़ते है ।

८९१

आसक्ति पूर्वक किसी के ओर मत देखो ।

अनिष्ट प्रवृत्ति

८९२

संतप्पती असाहुकम्मा

८९३

दुक्खी इह दुक्कडेणं

८९४

आसयण नत्थि मुक्खो

८९५

असेयकरी अन्नेसी इंखिणी

८९६

इंखिणिया उ पाविया

८९७

वेराणुबद्धा नरयं उवेंति

८९८

सप्पहास विवज्जए

८९९

मिच्छ दिठ्टी अणारिया

९००

णिद्दं पि नो पगामाए

९०१

पाणापाणे किले संति

अनिष्ट प्रवृत्ति

८९२

असाधुकर्मी महान् ताप भोगता है ।

८९३

यहा पर प्राणी दुष्कृत्यों से ही दुःखी होता है ।

८९४

अशातना मे (आज्ञा भंग मे) मोक्ष नही है ।

८९५

दूसरों की निंदा अश्रेयस्कारी ही है ।

८९६

निन्दा ही पाप है ।

८९७

वैर भावना में बंधे हुए नरक को प्राप्त होते हैं ।

८९८

हसीवाली (पाप क्रिया को) छोड़ दो ।

८९९

मिथ्या दृष्टि वाले अनार्य हैं ।

९००

बहुत निद्रा भी मत लो ।

९०१

प्राणी ही प्राणियों को क्लेश पहुंचाते हैं ।

कामादि

६०२

अबंभ चरिअं घोरं

६०३

इत्थी वसं गयाबाला, जिण सासण परम्मुहा

६०४

गिद्ध नरा कामेसु मुच्छिया

६०५

नो विहरे सहणमित्थीसु

६०६

अदक्खु कामाइं रोगवं

६०७

न कामभोगा, समयं उवेन्ति

६०८

कामभोगा विसं तालउड़ं

६०९

कामाणु गिद्धिप्पभवं खु दुक्खं

कामादि

९०२

अब्रह्मचर्य घोर पाप है ।

९०३

जो वाल मूर्ख स्त्री के वश मे गए हुए है, वे जिनशासन से परान्मुख हैं ।

९०४

गृद्ध मनुष्य काम भोगो में मूच्छित होते हैं ।

९०५

स्त्रियों के साथ विहार मत करो ।

९०६

काम भोगों को रोग पैदा करने वाले ही देखो ।

९०७

काम भोग वाले प्राणी शाँति (समता) को नही प्राप्त कर सकते है ।

९०८

काम भोग साक्षात् तालपुट विष के समान हैं ।

९०९

दु:ख निश्चय ही काम भोगों मे अनुगृद्ध होने से उत्पन्न होते है ।

९१०

दुज्जए काम भोगेय, निच्चसो परिवज्जए

९११

काम भोगे यदुच्चए

९१२

सत्ता कामेसु माणवा

९१३

भोगा इमे संग करा हवंति

९१४

कामे संसार वड्ढणे संकमाणोतणुं चरे

९१५

खाणी अणत्थाय उ कामभोगा

९१६

सल्लं कामा विसंकामा
कामा आसी विसोवमा

९१७

कामा दुरतिक्कमा

९१८

कामभोगरसगिद्धा उववज्जन्ति आसुरे काए

९१०

कठिनाई से छोड़ने योग्य इन काम भोगों को सदैव के लिए छोड़ दो।

९११

काम भोग कठिनाई से त्यागे जाते है।

९१२

मानव समाज काम भोगों मे आसक्त है।

९१३

ये भोग कर्मों की संगति कराने वाले होते हैं।

९१४

काम भोग संसार को वढ़ाने वाले है, ऐसा समझते हुए उन्हें पतला कर दे (क्षीण कर दे)।

९१५

काम भोग निश्चय ही अनर्थों की खान है।

९१६

ये काम भोग शल्य के समान है विष के समान है, और विप वाले सर्प के समान हैं।

९१७

काम भोगो पर विजय प्राप्त करना वड़ा ही कठिन है।

९१८

जो काम भोगो के रस मे गृद्ध है, वे अन्त मे असुरकाया में उत्पन्न होते है।

९१९

रुवेहि लुप्पंति भयावहेहिं

९२०

कामे कमाही कमियंखु दुक्खं

९२१

मूलमेय महमस्स

९२२

न बाहिरं परिभवे

९१९

भय लाने वाले रूप द्वारा ही प्राणी लुप्त होते हैं, विनाश को प्राप्त होते है।

९२०

काम भोगों को हटादो, इससे निश्चय ही दुःख भी हट जायेगा।

९२१

यह काम भोग नीचता की जड़ है।

९२२

बाह्य व्यक्तियो को पराजित मत करो।

बाल और पण्ड़ित

९२३

एएसु वाले य पकुव्वमाणे
आवट्टई कम्मसु पावएसु

९२४

तुलियाणं वालभावं, अवालं चेव पण्ड़िए
चइउण वालभावं, अवालं सेवई मुणी

९२५

तिउट्टई उ मेहावी, जाणं लोगंसि पावगं
तुट्टंति पाव कम्माणि नयंकम्ममकुव्वओ

९२६

न कम्मुणा कम्म खवेन्ति बाला, अकम्मुणा कम्म खवेन्तीधीरा
मेहाविणो लोभ भयावतीता, संतोसिणो नो पकरेन्ति पावं

९२७

मासे मासे तु जो बालो, कुसग्गेणं तु भुंजए
न सो सुयक्खायधम्मस्स, कलं अग्घइ सोलसिं

९२८

जैसे चोर सदा भयभीत रहता है अपने कुकर्म के वजह से दुःख पाता है वैसे ही अज्ञानी मनुष्य भी अपने कुकर्मों के कारण दुःख पाता है, मृत्यु का भय होने पर भी वह संयम की आराधना नही करता ।

९२९

वाल जीव ऐसा मानता है कि धन, पशु तथा ज्ञाति जन मेरा रक्षण करेंगे । वे मेरे हैं मै उनका हूँ परन्तु किसी प्रकार उनकी रक्षा नही होती अर्थात् आखीर मे उनको शरण नहीं मिलता ।

९३०

अपनी आत्मा को बालभाव में नही दिखाना चाहिए ।

९३१

वालजन अज्ञानी अपने कार्यों द्वारा कर्म का क्षय नहीं कर सकते है ।

९३२

मूढ आर्त (आर्तध्यान संबन्धी कामों) में अजर अमर की तरह फंसे हुए है ।

९३३

वाल प्रज्ञ (मूर्खवुद्धिवाला) दूसरे मनुष्य की ही निंदा करता है।

९३४

पने आपको पंडित मानने वाले वालजन शरण रहित होते है ।

९३५

वाल जन ही अभिमानी होता है ।

९२८

निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्त कम्मेहिं दुम्मई
तारिसो मरणंते वि, न आराहेइ संवरं

९२९

वित्त पसवो य नाइओ, तं बाले सरणंति मन्नई
एते मम तेसुवि अहं, नो ताण सरणं न विज्जई

९३०

बाल भावे अप्पाणं नो उवदंसिज्जा

९३१

न कम्मुणा कम्म खवेंति बाला

९३२

अट्टेसु मूढ़े अजरामरेव्वा

९३३

अन्नं जणं खिंसति बालपन्ने

९३४

न सरणं बाला पंड़िय माणिणो

९३५

बाल जणो पगब्भइ

९२८

जैसे चोर सदा भयभीत रहता है अपने कुकर्म के वजह से दुःख पाता है वैसे ही अज्ञानी मनुष्य भी अपने कुकर्मों के कारण दुःख पाता है, मृत्यु का भय होने पर भी वह संयम की आराधना नही करता ।

९२९

वाल जीव ऐसा मानता है कि धन, पशु तथा ज्ञाति जन मेरा रक्षण करेंगे । वे मेरे है मै उनका हूँ परन्तु किसी प्रकार उनकी रक्षा नही होती अर्थात् आखीर मे उनको शरण नही मिलता ।

९३०

अपनी आत्मा को बालभाव में नहीं दिखाना चाहिए ।

९३१

वालजन अज्ञानी अपने कार्यों द्वारा कर्म का क्षय नहीं कर सकते है ।

९३२

मूढ़ आर्त (आर्तध्यान संबन्धी कामों) मे अजर अमर की तरह फंसे हुए है ।

९३३

वाल प्रज्ञ (मूर्खबुद्धिवाला) दूसरे मनुष्य की ही निंदा करता है।

९३४

अपने आपको पंडित मानने वाले बालजन शरण रहित होते है ।

९३५

बाल जन ही अभिमानी होता है ।

९२८

निच्चुव्विग्गो जहा तेणो, अत्त कम्मेहिं दुम्मई
तारिसो मरणंते वि, न आराहेइ संवरं

९२९

वित्त पसवो य नाइओ, तं बाले सरणंति मन्नई
एते मम तेसुवि अहं, नो ताण सरणं न विज्जई

९३०

बाल भावे अप्पाणं नो उवदंसिज्जा

९३१

न कम्मुणा कम्म खवेंति बाला

९३२

अट्टेसु मूढे अजरामरेव्वा

९३३

अन्नं जणं खिंसति बालपन्ने

९३४

न सरणं बाला पंडिय माणिणो

९३५

बाल जणो पगब्भइ

९२८

जैसे चोर सदा भयभीत रहता है अपने कुकर्म के वजह से दुःख पाता है वैसे ही अज्ञानी मनुष्य भी अपने कुकर्मों के कारण दु.ख पाता है, मृत्यु का भय होने पर भी वह संयम की आराधना नही करता ।

९२९

वाल जीव ऐसा मानता है कि धन, पशु तथा ज्ञाति जन मेरा रक्षण करेंगे । वे मेरे है मै उनका हूँ परन्तु किसी प्रकार उनकी रक्षा नही होती अर्थात् आखीर मे उनको शरण नही मिलता ।

९३०

अपनी आत्मा को बालभाव मे नही दिखाना चाहिए ।

९३१

वालजन अज्ञानी अपने कार्यों द्वारा कर्म का क्षय नहीं कर सकते है ।

९३२

मूढ आर्त (आर्तध्यान संबन्धी कामो) मे अजर अमर की तरह फंसे हुए है ।

९३३

वाल प्रज्ञ (मूर्खबुद्धिवाला) दूसरे मनुष्य की ही निंदा करता है।

९३४

अपने आपको पंडित मानने वाले बालजन शरण रहित होते हैं ।

९३५

वाल जन ही अभिमानी होता है ।

९३६

वाले पापेहिं मिज्जती

९३७

सीयंति अबुहा

९३८

ममाइ लुप्पई वाले

९३९

मंदा मोहेण पाउज्जा

९३६

मूर्ख पापों से डूबता है।

९३७

अज्ञानी मूर्ख दुःखी होते हैं।

९३८

बाल आत्मा ममता से डूबता है।

९३९

मंद बुद्धि वाले ही मोह से ढंके हुए होते हैं।

क्षमा

६४०

खंतिं सेविज्ज पंड़िए

६४१

खंतिएणं परिसहे जिणइ

६४२

खमावणयाए पल्हायण भावं जणयइ

६४३

पियमप्पियं सव्वं तितिक्खयेज्जा

६४४

समता सव्वत्थ सुव्वते

६४५

समयं सया चरे

क्षमा

९४०

सज्जन पुरुष क्षमा का आचरण करें।

९४१

उच्च आत्मा क्षमा द्वारा परिषहों को जीतता है।

९४२

क्षमापन से प्रसन्नता के भाव पैदा होते है।

९४३

प्रिय अप्रिय सभी शांति पूर्वक सहन करो।

९४४

सुव्रती सर्वत्र क्षमा रक्खें।

९४५

सदैव क्षमा का आचरण करो।

गुरुशिष्य

९४६

हिरिमं पडिसंलीणे, सुविणीए ।

९४७

गुरुं तु नासाययई स पुज्जो

९४८

न या वि मोक्खो गुरु हीलणाए

९४९

कसं व दट्ठुमाइण्णे, पावगं परिवज्जए ।

गुरुशिष्य

९४६

जो शिष्य लज्जाशील और इन्द्रिय-विजेता होता है, वह सुविनीत बनता है।

९४७

जो गुरु की आशातना नही करता, वह पूज्य है।

९४८

जो साधक गुरुजनों की अवहेलना करता है, वह कभी बन्धन से मुक्त नही हो सकता।

९४९

जैसे विनीत घोड़ा चाबुक को देखते ही उन्मार्ग को छोड़ देता है, वैसे ही विनीत शिष्य गुरु के इंगित और आकार को देखकर अशुभ प्रवृत्ति को छोड़ दे।

इन्द्रिय निग्रह

६५०

इंदियाइं वसेकाउं, अप्पाणं उवसंहरे।

६५१

न रागसत्तू धरिसेइ चित्तं,
पराइओ वाहिरिवोसहेहिं।

६५२

चरेज्ज भिक्खू सुसमाहि इंदिए।

इन्द्रिय निग्रह

६५०

पाच इन्द्रियो को वश में कर अपनी आत्मा का उपसंहार करना चाहिए। याने प्रमाद की ओर बढ़ती हुयी आत्मा को धर्म की ओर लाना चाहिए।

६५१

जैसे उत्तम प्रकार की औषधि रोग को नष्ट कर देती है पुनः उभरने नही देती, वैसे ही जितेन्द्रिय पुरुष के चित्त को राग तथा विषय रूपी कोई शत्रु सता नही सकता।

६५२

मुनि सर्व इन्द्रियों को सुसमाहित करता हुआ विचरण करे।

मृत्यु

६५३

जहेह सिहो य मिग गहाय, मच्चू नरं नेइ हु अन्तकाले ।
न तस्स माया व पिता य भाया, कालम्मि तम्म सहरा भवन्ति

६५४

इह जीविए राय असासयम्मि, घणियं तु पुण्णाइं अकुव्वमाणो
से सोयई मच्चुमुहोवणीए, धम्मं अकाऊण परंमि लोए ॥

६५५

जस्सत्थि मच्चुणा सक्खं, जस्सवऽत्थि पलायणं
जो जाणे न मरिस्सामि सोहु कखे सुए सिया

६५६

माणुस्सं च अणिच्चं, वाहिजरामरणवेयणा पउरं

६५७

डहरावुड्ढा य पासह गब्भत्था वि चयन्ति माणवा
सेणे जह वट्टयं हरे, एव आउखयम्मि तुट्टई

६५८

पंडियाण सकाम मरण

मृत्यु

९५३

जैसे सिंह मृग को पकड़ कर ले जाता है उसी प्रकार मृत्यु अन्त समय में मनुष्य को पकडकर परलोक मे ले जाती है। उस समय उसके माता पिता भ्रात आदि कोई भी सहायक नही होता है।

९५४

हे राजन् ! इस अशाश्वत जीवन में पुण्य को न करने वाला जीव मृत्यु के मुख में पहुँचकर सोच करता है और धर्म को न करने वाला जीव परलोक में जाकर सोच करता है।

९५५

जिसकी मृत्यु से मित्रता है जो मृत्यु से भाग सकता है जिसको यह ज्ञान है कि मैं नही मरूंगा वही आगामी दिवस की आशा कर सकता है।

९५६

मनुष्यदेह क्षणभगुर है तथा व्याधि जरामरण और वेदना से पूर्ण है।

९५७

देखो ससार की ओर दृष्टिपात करो। बालक और वृद्ध सभी मरते है कई मनुष्यो का गर्भावस्था मे ही अवसान हो जाता है। जैसे बाझ पक्षी तीतर पर झपटा लगा के उसका सहार करता है उसी प्रकार आयुष्य का क्षय होते ही मृत्यु मनुष्य पर चोट लगाकर उसका प्राण हर लेता है।

९५८

पण्डितों का सकाम मरण होता है।

परलोक

९५९

पच्छा वि ते पयाया, खिप्प गच्छन्ति अमरभवणाइं ।
जेसिं पियो तवो सजमो य, खती य वंभचेरं च ।

९६०

तेणावि ज कयं कम्म, सुहं वा जइ वादुहं ।
कम्मुणा तेण सजुत्तो गच्छइ उ पर भवं ॥

९६१

गारं पि अ आवसे नरे,
अणुपुव्वं पाणेहि संजए ।
समता सव्वत्थ सुव्वते,
देवाणं गच्छे स लोगयं ॥

परलोक

९५९

जिन्हे तप, संयम, क्षमा, और ब्रह्मचर्य प्रियकर है, वे शीघ्र ही देवलोक को प्राप्त होते हैं। भले ही पिछली अवस्था मे ही क्यों न प्रव्रजित हुये हों ?

९६०

उस मरने वाले व्यक्ति ने जो भी कर्म किया है—शुभ या अशुभ उसी के साथ वह परलोक में चला जाता है।

९६१

गृह मे निवास करता हुआ गृहस्थ भी यथा-शक्ति प्राणियों के प्रति दयाभाव रखे। सर्वत्र समता धारण करे, नित्य जिन वचन का श्रवण करे, तो वह मृत्यु के पश्चात् दिव्य गति मे उत्पन्न होता है।

परलोक

९५९

पच्छा वि ते पयाया, खिप्प गच्छन्ति अमरभवणाइं ।
जेसिं पियो तवो संजमो य, खती य वंभचेरं च ।

९६०

तेणावि ज कयं कम्म, सुहं वा जइ वादुहं ।
कम्मुणा तेण सजुत्तो गच्छइ उ पर भवं ॥

९६१

गारं पि अ आवसे नरे,
अणुपुव्वं पाणोहि संजए ।
समता सव्वत्थ सुव्वते,
देवाणं गच्छे स लोगय ॥

परलोक

९५९

जिन्हें तप, संयम, क्षमा और ब्रह्मचर्य प्रियकर है, वे शीघ्र ही देवलोक को प्राप्त होते हैं। भले ही पिछली अवस्था में ही क्यों न प्रव्रजित हुये हों ?

९६०

उस मरने वाले व्यक्ति ने जो भी कर्म किया है—शुभ या अशुभ उसी के साथ वह परलोक में चला जाता है।

९६१

गृह मे निवास करता हुआ गृहस्थ भी यथा-शक्ति प्राणियों के प्रति दयाभाव रखे। सर्वत्र समता धारण करे, नित्य जिन वचन का श्रवण करे, तो वह मृत्यु के पश्चात् दिव्य गति में उत्पन्न होता है।

मोह

६६२

इत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना, नो हव्वाए नो पाराए

६६३

एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ

६६४

असंकियाईं सकंति, संकियाई असंकिणो

६६५

जहाय अंडप्प भवा बलागा, अंडं बलागप्पभवं जहाय,
एमेव मोहाययणं खू तण्हा. मोहं च तण्हाययणं वयंति

६६६

दुक्खं हयं जस्सन होई मोहो

६६७

मोहा विगइं उवेइ

मोह

९६२

वार वार मोह ग्रस्त होने वाला साधक न इस पार रहता है न उस पार अर्थात न इस लोक का न पर लोक का।

९६३

जो मोह को क्षय करता है, वह अन्य अनेक कर्म विकल्पो को क्षय करता है।

९६४

मोहमूढ व्यक्ति जहा भय नही वहां भय करता है और जहां भय की आशका नही वहां करता है।

९६५

जिस प्रकार वगुलि अण्डे से उत्पन्न होति है और अण्ड़ा वगुलि से, इसी प्रकार मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है और तृष्णा मोह से।

९६६

जिसको मोह नही होता उसका दुःख नष्ट हो जाता है।

९६७

मोह से राम द्वेष रूप विकार उत्पन्न होता है।

मोह

९६२

इत्थ मोहे पुणो पुणो सन्ना, नो हव्वाए नो पाराए

९६३

एगं विगिंचमाणे पुढो विगिंचइ

९६४

असंकियाइं सकंति, संकियाई असंकिणो

९६५

जहाय अंडप्प भवा बलागा, अंडं बलागप्पभवं जहाय,
एमेव मोहाययणं खू तण्हा, मोहं च तण्हाययणं वयंति

९६६

दुक्खं हयं जस्सन होई मोहो

९६७

मोहा विगइं उवेइ

मोह

९६२

वार वार मोह ग्रस्त होने वाला साधक न इस पार रहता है न उस पार अर्थात न इस लोक का न पर लोक का।

९६३

जो मोह को क्षय करता है, वह अन्य अनेक कर्म विकल्पों को क्षय करता है।

९६४

मोहमूढ व्यक्ति जहां भय नहीं वहां भय करता है और जहा भय की आशका नहीं वहा करता है।

९६५

जिस प्रकार बगुलि अण्डे से उत्पन्न होति है और अण्ड़ा बगुलि से, इसी प्रकार मोह तृष्णा से उत्पन्न होता है और तृष्णा मोह से।

९६६

जिसको मोह नही होता उसका दुःख नष्ट हो जाता है।

९६७

मोह से राम द्वेष रूप विकार उत्पन्न होता है।

* दुर्लभांग
* लेश्या
* अशरण
* पडावश्यक

दुर्लभांग

९६८

उत्तम धम्म सुई हु दुल्लहा

९६९

सुई धम्मस्स दुल्लहा

९७०

सद्दहणा पुणरावि दुल्लहा

९७१

सद्धा परम दुल्लहा

९७२

णो सुलभं वोहि च आहियं

९७३

संबोही खलु दुल्लहा

९७४

दुल्लहया काण्ण फासया

९७५

दुल्लहाओ तहच्चाओ

९७६

आयरिअत्तं पुणरावि दुल्लहं

दुर्लभांग

९६८

निश्चय ही उत्तम धर्म का श्रवण दुर्लभ है ।

९६९

धर्म सुनने का प्रसंग मिलना दुर्लभ है ।

९७०

पुनः पुनः श्रद्धा प्राप्त होना दुर्लभ है ।

९७१

श्रद्धा परम दुर्लभ है ।

९७२

सम्यकज्ञान सुलभ रीति से प्राप्त होने योग्य नही कहा गया है ।

९७३

संबोधी याने सम्यकज्ञान निश्चय ही दुर्लभ है ।

९७४

शरीर द्वारा धर्म का परिपालन किया जाना दुर्लभ है ।

९७५

श्रद्धानुसार ही त्याग प्राप्ती भी दुर्लभ है ।

९७६

आचरण करना ही सब से अधिक दुर्लभ है ।

९७७

दुल्लभेऽयं समुस्सए

९७८

अहीण पंचेंदियया हु दुल्लहा

९७९

नो सुलभं पुणरावि जीवियं

९८०

जुद्धारिहं खलु दुल्लहं

९८१

इओ विद्धंसमाणस्स
पुणो संबोहि दुल्लभा

९८२

बहुकम्म लेव लित्ताणं बोही होइ सुदुल्लहा

९८३

सुदुल्लह लहिऊं बोहिलाभं विहरेज्ज

९८४

माणुस्सं खु सुदुल्लहं

९७७

यह शरीर संपति दुर्लभ है।

९७८

परिपूर्ण पांचों इन्द्रियो की स्थिति प्राप्त होना दुर्लभ है।

९७९

वार वार जीवन प्राप्त होना सुलभ नहीं है।

९८०

आर्य युद्ध याने कषायो से युद्ध करना बहुत ही दुर्लभ है।

९८१

यहा से विध्वंस हुयी आत्मा के लिए पुनः ज्ञान प्राप्त होना दुर्लभ है।

९८२

वहुत कर्मों के लेप से लिप्त प्राणियों के लिए सम्यक्ज्ञान की प्राप्ति सुदुर्लभ है।

९८३

सुदुर्लभ वोधिलाभ की प्राप्ति के लिए विचरण करें

९८४

मनुष्यत्व निश्चय ही सुदुर्लभ है।

लेश्या

९८५

किण्हानोलाय काउ य, तेऊ पम्हा तहेव य
सुक्कलेसा य छट्ठा य, नामाइं तु जहक्कमं

९८६

अंतमुहुत्तम्मि गए अंत, मुहुत्तम्मि सेसए चेव
लेसाहिं परिणयाहिं, जीवागच्छन्ति परलोयं

९८७

तम्हा ए यासि लेसाणं, अणुभावे वियाणिया
अप्पसत्थाओ वज्जिता पसत्थाओऽहिट्ठिएमुणी

९८८

लेसं समाहट्टू परिवयेज्जा

लेश्या

९८५

लेश्या छ है । उनके क्रम से नाम कृष्ण, नील, कापोत, तेजो, पद्म और शुक्ल लेश्या है ।

९८६

लेश्या की परिणति के वाद अन्तर्मुहुर्त के वीतने पर और अन्तर्मुहुर्त शेष रहने पर जीव परलोक में जाता है ।

९८७

इसलिए साधुलेश्या के अनुभव रस को जानकर अप्रशस्त लेश्याओं को छोड़कर प्रशस्त लेश्या अंगीकार करें

९८८

अशुभ लेश्या का परिहार कर के संयमशील होवे ।

अशरण

९८९

वित्त पसवो व नाइओ, तं बाले सरणं ति मन्नई,
एए मम तेसुवि, अहं नो ताण, सरणं न विज्जई

९९०

दाराणि सुया चेव मित्ता य तह बन्धवा
जीवन्तमणु जीवन्ति मयं नाणु वयन्तिय

९९१

जमिणं जगई पुढ़ो जगा, कम्मेहिं लुप्पंति पाणिणो ।
सयमेव केड़ेहि गाहई, नो तस्स मुच्चेज्जपुठ्ठयं ।

९९२

पुढ़ो छंदा इह माणवा पुढ़ो, दुक्ख पवेइयं

९९३

जहेह सीहोव मिय गहाय, मच्चु नर नेह हु अंतकाले
न तस्स माया व पिया व भाया कालम्मि तस्स सहरा
भवति

अशरण

९८९

अज्ञानी मनुष्य धन पशु और जाति वालो को अपना शरण मानता है, और समझता है कि 'ये मेरे है। और मैं इनका हू' परन्तु इनमें से कोई भी अन्त मे त्राण तथा शरण देने वाला नही है।

९९०

स्त्री, पुत्र, मित्र, वन्धुजन, सव कोई जीते जी के ही साथी हैं, मरने पर कोई भी साथ नहीं निभाता।

९९१

संसार मे सव प्राणी अपने कृत कर्मों के द्वारा ही दुखी: होते हैं। अच्छा या वुरा जैसा भी कर्म है उसका फल भोगे विना पिंड नही छूटता।

९९२

ससार में लोग भिन्न भिन्न अभिप्राय वाले होते हैं, पर अपना अपना दुख: सव को स्वयं ही भोगना पड़ता है।

९९३

जैसे सिह हिरण को पकड़ ले जाता है, इसी तरह अन्त समय मृत्यु भी मनुष्य को उठा ले जाती है। उस समय माता पिता भाई आदि कोई भी उसके दुःख में भागीदार नहीं बनते।

९९४

संसारमावन्न परस्स अट्ठा, साहारणं जं च करेइ कम्मं ।
कम्मस्स ते तस्स उ वेय काले, न वंधवा वंधवयं उवेंति ॥

९९५

वेया अहीया न भवंति ताणं भुत्तादिया निंति तमं तमेणं
जाया य पुत्ता न हवंति ताणं, को नाम ते अणुमन्नेज्ज एयं

९९६

चिच्चादुपयं च चउप्पयं च, खेत्तं गिह धण धन्नं च सव्वं
कमप्पवीयो अवसो पयाइ परं भवं सुन्दरं पावगं वा

९९७

जम्मं दुःक्खं जरा दुःक्खं, रोगाणि मरणाणिय
अहोदुक्खो हु संसारो जत्थ की सन्ति जन्तुणो

९९८

इमं शरीरं अणिच्चं, असुइं असुइसंभवं
असासया वा समिणं दुःक्ख के साणभायणं

९९४

संसारी मनुष्य अपने प्रियजनों के लिए बुरे से बुरे कर्म भी कर डालता है, पर जब उसका दुष्फल भोगने का समय आता है, तब अकेला ही दुःख भोगता है। कोई भी भाई बन्धु उसका दुःख बटाने वाला नही होता है।

९९५

पढ़े हुए वेद तेरा त्राण नही कर सकते, जिमाए हुए ब्राह्मण अन्धकार से अन्धकार मे ले जाते हैं तथा पैदा किये हुए पुत्र भी, रक्षा नही कर सकते। एसी दशा में कौन विवेकी पुरुष इन्हें स्वीकार करेगा।

९९६

दास, दासी, द्वीपद, घोड़ा, हाथी, चतुष्पद, क्षेत्र, गृह और धन धान्य सब कुछ छोड़कर, विवशता की अवस्था में प्राणी अपने कृत कर्मो के साथ अच्छे या बुरे परभव को चला जाता है।

९९७

जन्म जरा मरण रोग का दुःख है। अहो ! सारा संसार दुःखमय ही है। जब देखो तब प्रत्येक प्राणि क्लेश पा रहा है।

९९८

यह शरीर अनित्य है, अशुचि है। अशुचि से उत्पन्न हुआ है, दुःख और क्लेशो का धाम है। जीवात्मा का निवास अल्प है, अचानक छोड़ के जाना है।

षड़ावश्यक

९९९

समाइएणं भंते ? जीवे किं जणयई?
सामाइयेणं सावज्ज जोगविरइं जणयइ

१०००

चउव्वीसत्थएणं भंते ? जीवे किं जणयई ?
चउव्वीसत्थएणं दंसण विसोहि जणयइ ।

१००१

वंदयेणं भंते ! जीवे किं जणयइ ?
वंदएणं नियागोयं कम्मं खवेइ, उच्चागोयं कम्मं निबंधइ सोहग्गं च णं अपड़िहयं अणाफलं निव्वत्तेइ दाहिण भावं च णं जणयइ

१००२

पड़िक्कमणेणं भंते ? जीवे किं जणयइ ?
पड़िक्कमणेणं वयछिद्दाणि पिहेइ पिहियवयछिद्देपुण जीवे निरुद्धासवे असबल चरित्तो अट्ठसु पवयणमायासु उवउत्तो अपुहुत्तो सुप्पणिहिए विहरइ

षड़ावश्यक

९९९

सामायिक से जीव क्या पाता है ? सामायिक से जीव के सावद्ययोगों की निवृत्ति होती है।

१०००

चतुर्विंशतिस्तव करने से क्या फल होता है ? चतुर्विंशतिस्तव से दर्शन विशुद्धि होती है।

१००१

हे भगवन् ! वन्दना करने से जीव क्या फल पाता है ? वंदना से नीचगोत्र कर्म का क्षय होकर ऊंच गोत्र कर्म बंधता है अविच्छिन्न सौभाग्य तथा आज्ञाफल प्राप्त करता है और विश्ववल्लभ होता है।

१००२

प्रतिक्रमण से जीव क्या फल पाता है ? इससे व्रत में हुए छिद्रो को ढंकता है, फिर शुद्ध व्रतधारी होकर आश्रवो को रोकता है। आठ प्रवचन माता मे,सावधान होता है। शुद्ध चारित्र पालता हुआ समाधि पूर्वक संयम में विचरता है।

१००३

काउसग्गेणं भंते ! जीवे किं जणयई ?
काउसग्गेणं तीयपडुप्पन्नपायच्छित्तं विसोहेइ विशुद्ध पायच्छित्ते य जीवे निव्वुयहियए ओहरिय भरोव्व भारवहे पसत्थज्झाणोवगए सुहं सुहेणं विहरइ।

१००४

पच्चक्खाणेणं भंते । जीवे किं जणयई ?
पच्चक्खाणेणं आसवदाराइं निरुंभइ पच्चक्खाणेणं इच्छानिरोह जणयइ इच्छानिरोहं गए य णं जीवे सव्वदव्वेसु विणीयतण्हे सीइभूए विहरइ ।

१००५

सूरोदए पासति चक्खुणेव

१००६

वओ अच्चेति जोव्वणंच

१००७

चइज्ज देहं न हु धम्मसासणं

१००८

आणाए धम्मं

१००३

हे भगवन ! कायोत्सर्ग का क्या फल है ? कायोत्सर्ग से भूत और वर्तमान काल के अतिचारों की शुद्धि होती है। इस शुद्धि से बोझ रहित हल्का, निश्चिन्त और प्रशस्त ध्यान युक्त होकर सुखपूर्वक विचरता है।

१००४

हे भगवन ! प्रत्याख्यान से जीव को क्या फल प्राप्त होता है ? प्रत्याख्यान से जीव आश्रवद्वारो को बन्द कर देता है। इच्छा का निरोध होता है । इच्छानिरोध होने से जीव सभी द्रव्यों से तृष्णा रहित होकर शान्ति से विचरता है।

१००५

कई लोग छोटी छोटी बातो पर क्षुब्ध हो जाते है।

१००६

उम्र और यौवन प्रतिपल व्यतीत हो रहा है।

१००७

देह को भले ही त्याग दे, पर अपने धर्मशाशन को न त्यागे।

१००८

जिनेश्वर देव की आज्ञा के पालन मे ही धर्म है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त आगम

१. आवश्यक सूत्र
२. भगवती
३. उत्तराध्ययन
४. सूत्रकृतांग
५. नंदी
६. दशवैकालिक सूत्र
७. आचारांग
८. प्रश्नव्याकरण
९. अनुयोग द्वार
१०. बृहत्कल्प भाष्य
११. स्थानांग
१२. समवायांग
१३. राजप्रश्नीय सूत्र
१४. उपासकदशांग
१५. ज्ञाता धर्म कथा
१६. अन्तगढ़दशांग
१७. औपपातिक
१८. दशाश्रुतस्कन्ध

१. आवश्यक
२. भगवती
३. उत्तरा.१८,३८
४. सूत्र० ६,२५
५. सूत्र० ६,२१
६. सूत्र० ६,२३
७. सूत्र० ६,२२
८. भग०
९. भगवती
१०. भग०
११. भग०
१२. भग०
१३. आवश्यक सूत्र० अ० ४
१४. उत्तरा. २३,८५
१५. दशवै० १,१
१६. बृह०भा० ८१४
१७. उत्तरा. २३,६८
१८. सूत्र० ६,४
१९. उत्तरा. १२,४६
२०. दश० ९,२,२
२१. सूत्र० १५,१५
२२. उत्तरा. १४,१७
२३. उत्तरा. १९,२२
२४. उत्तरा. १८ ३३
२५. आचा. ३,१०८, उ० १
२६. उत्तरा. १६,१७
२७. उत्तरा. १४,४०
२८. उत्तरा. ६, ९
२९. उत्तरा २९,३
३०. उत्तरा. १८,२५
३१. आचा. ६,१८१,
३२. सूत्र.२,२८ उ.२
३३ उत्तरा. २१,१२
३४. उत्तरा. २५,१६
३५. उत्तरा. २८,२७
३६. ठाणा. २ ठा. १ ला, उ० २५
३७. ठाणा० ३ ठा० उ० ४,२७
३८. ठाणा० ४ उ० ४,३८
३९. प्रश्न० २,३
४०. प्रश्न० २,३
४१. आचा० १,८,३
४२. दशा०श्रु० ५,१
४३. दशवै० १,१
४४. आचाराग
४५. दशवै० ४,११
४६. उत्तरा० ३,८
४७. आचाराग
४८ बृहत्कल्प
४९. उत्तरा० ३,१
५०. उत्तरा. १४,२५
५१. उत्तरा. १४,२४
५२. दशवै० ८,३६
५३. उत्तरा०
५४. उत्तरा०
५५. उत्तरा०
५६. उत्तरा०
५७. उत्तरा०
५८. उत्तरा०
५९. उत्तरा० ७,१४
६०. उत्तरा० ७,१५
६१. उत्तरा. १०,१७
६२. आचा० १,८.१
६३. उत्तरा० ३,१२
६४ स्थाना. १,१,४०

प्रस्तुत ग्रन्थ में प्रयुक्त आ

१. आवश्यक सूत्र
२. भगवती
३. उत्तराध्ययन
४. सूत्रकृतांग
५. नंदी
६. दशवैकालिक सूत्र
७. आचाराग
८. प्रश्नव्याकरण
९. अनुयोग द्वार
१०. वृहत्कल्प भाष्य
११. स्थानांग
१२. समवायांग
१३. राजप्रश्नीय सूत्र
१४. उपासकदशाग
१५. ज्ञाता धर्म कथा
१६. अन्तगढ़दशाग
१७. औपपातिक
१८. दशाश्रुतस्कन्ध

१३२ प्रश्न० २, २
१३३ प्रश्न० २, २
१३४ प्रश्न० २, २
१३५. प्रश्न० २, २
१३६. प्रश्न० २, २
१३७. दशवै०
१३८. दशवै० ६,१२
१३९. दशवै० ७,११
१४०. उत्तरा० ६,२
१४१. उत्तरा १९,२६
१४२. प्रश्न० २, २
१४३. उत्तरा १,२४
१४४. सूत्र० ९, २५
१४५. सूत्र० १०,२२
१४६. दशवै. ६, १२
१४७ सूत्र. २.१४ ३
१४८ उत्तरा.१८,२६
१४९. दशवै० ७.४०
१५० दशवै० ६,११
१५१. दशवै० ७,११
१५२. प्रश्न० २, २
१५३ दशवै० ७.११
१५४. दशवै० ७,११
१५५ दशवै० ७,११
१५६. दशवै० ७,१२
१५७. दशवै० ७,४८
१५८. सूत्र० १४,२१
१५९. प्रश्न० २, २
१६०. सूत्र. १,१५,३
१६१. प्रश्न० २, ३
१६२. दश० अ० ४
१६३. उत्तरा० अ० ३२ गा० २९
१६४. उत्तरा.१९,२८
१६५. दश० ९,२,२२
१६६ प्रश्न० १ ३
१६७. प्रश्न० १,३९
१६८ प्रश्न० २, ३
१६९ प्रश्न० २, ३
१७० प्रश्न० ३, ९
१७१. उत्तरा ३२,२९
१७२. दश.६,१३,१४
१७३. प्रश्न०
१७४. सूत्र० १०, २
१७५. आचा०
१७६. सूत्र० ६, २३
१७७. सूत्र०
१७८. स्थाना०
१७९. प्रश्न० २, ४
१८०. प्रश्न० २, ४
१८१. प्रश्न० २, ४
१८२. प्रश्न०
१८३. उत्तरा.१६,१६
१८४. सूत्र. १,१५,९
१८५. उत्तरा.१३,१७
१८६. उत्तरा. १६,९
१८७. उत्तरा. १६,१
१८८. सूत्र. १,८,१६
१८९. उत्तरा.
१९०. सूत्र. ९,३२
१९१. दश. ८,५४
१९२. उत्तरा. १६.८
१९३. उत्तरा. १६
१९४. सूत्र. १०,१५
१९५. दशवै. ८,५९
१९६. उत्तरा. ८,१९
१९७. दशवै. ८,१९
१९८. आचा. ५, १५५,३
१९९. सूत्र. ७ २२
२००. उत्तरा.३२,१३
२०१. उत्तरा. १६

६५. उत्तरा. २३ २५
६६ उत्तरा. २३ ३१
६७ उत्तरा. २३,३२
६८ सूत्र० ६, २३
६९ सूत्र.१.१०,उ.४
७०. दशवै० ६.९
७१. दशवै० ६,१०
७२ दशवै० ८,१२
७३. आचा० २,८१,
उ० ३
७४ उत्तरा० ८.९
७५. सूत्र ५,२४,उ २
७६. उत्तरा० २,२०
७७. उत्तरा० ५ ३०
७८. उत्तरा० ६ ७
७९. आचा.३,७,उ २
८०. आचा. ६.१७५,
उ० ३
८१. सूत्र० २, १३,
उ० ३
८२. उत्तरा. १८,११
८३. उत्तरा १३,३२
८४. दशवै० ३, १५
८५. दशवै० ६, ४६

८६ आचा०
८७ आचा०
८८ आचा०
८९. आचा०
९० आचा०
९१ आचा०
९२ आचा०
९३ आचा०
९४ आचा०
९५. आचा०
९६ सूत्र०
९७ सूत्र०
९८. सूत्र०
९९. सूत्र०
१०० . स्थानांग
१०१ भगवती
१०२. भगवती
१०३ प्रश्नव्या०
१०४. प्रश्न०
१०५. प्रश्न०
१०६. प्रश्न०
१०७. प्रश्न०
१०८. प्रश्न०
१०९. प्रश्न०

११० दश०
१११ दश०
११२ उत्तरा०
११३ उत्तरा०
११४. उत्तरा०
११५ दश० अ० ४
११६. सूत्र १.११,३
११७. उत्तरा० ६ २
११८. आचा. ३, १,
४०९
११९. सूत्र. १,१५,४
१२०. उत्त०
१२१. उत्त०
१२२. आचा १,३,३
१२३ सूत्र० १,११,
२१
१२४ सूत्र० ६, २३
१२५. सूत्र० ८, १९
१२६ सूत्र०
१२७ प्रश्न० १, २
१२८. प्रश्न०
१२९. प्रश्न०
१३०. प्रश्न० २
१३१. प्रश्न० २, २

१३२ प्रश्न० २, २
१३३. प्रश्न० २, २
१३४ प्रश्न० २, २
१३५. प्रश्न० २, २
१३६. प्रश्न० २, २
१३७. दशवै०
१३८. दशवै० ६,१२
१३९. दशवै० ७,११
१४०. उत्तरा० ६,२
१४१. उत्तरा १९,२६
१४२. प्रश्न० २, २
१४३. उत्तरा १,२४
१४४. सूत्र० ९, २५
१४५ सूत्र० १०,२२
१४६. दशवै ६, १२
१४७ सूत्र. २,१४ ३
१४८ उत्तरा.१८,२६
१४९. दशवै० ७.४०
१५० दशवै० ६,११
१५१. दशवै० ७,११
१५२. प्रश्न० २, २
१५३ दशवै० ७ ११
१५४. दशवै० ७,११
१५५ दशवै० ७,११

१५६. दशवै० ७,१२
१५७. दशवै० ७,४८
१५८. सूत्र० १४,२१
१५९. प्रश्न० २, २
१६०. सूत्र. १,१५,३
१६१. प्रश्न० २, ३
१६२. दश० अ० ४
१६३. उत्तरा० अ० ३२ गा० २९
१६४. उत्तरा.१९,२८
१६५. दश० ९,२,२२
१६६ प्रश्न० १ ३
१६७. प्रश्न० १,३९
१६८ प्रश्न० २, ३
१६९ प्रश्न० २. ३
१७० प्रश्न० ३, ९
१७१. उत्तरा ३२,२९
१७२. दश.६,१३,१४
१७३. प्रश्न०
१७४. सूत्र० १० २
१७५. आचा०
१७६. सूत्र० ६. २३
१७७. सूत्र०
१७८. स्थाना०

१७९. प्रश्न० २, ४
१८०. प्रश्न० २, ४
१८१. प्रश्न० २, ४
१८२. प्रश्न०
१८३. उत्तरा.१६,१६
१८४. सूत्र. १,१५,९
१८५. उत्तरा.१३,१७
१८६. उत्तरा. १६,९
१८७. उत्तरा. १६,१
१८८. सूत्र. १,८,१६
१८९. उत्तरा.
१९०. सूत्र. ९,३२
१९१. दश. ८,५४
१९२. उत्तरा. १६.८
१९३. उत्तरा. १६
१९४. सूत्र. १०,१५
१९५. दशवै. ८,५९
१९६. उत्तरा. ८.१९
१९७. दशवैं. ८,१९
१९८. आचा. ५, १५५,३
१९९. सूत्र. ७ २२
२००. उत्तरा.३२,१३
२०१. उत्तरा. १६

२०२. सूत्र. १०,४
२०३. सूत्र. ४,२७,१
२०४. दशवै. २,९
२०५. दश. ५,९
२०६ आचा. ३,
२०७. दश. ८,५६
२०८. उत्तरा. १६,२
२०९. सूत्र, २,२,३
२१०. सूत्र. १४,१
२११. उत्तारा. १९, २९
२१२. दश. ६,५९
२१३. उत्तरा. १९, ३४
२१४. दश. ६,१६
२१५. उत्तारा. १६, १४
२१६. उत्तरा.
२१७ आचा. १,२,५
२१८ सूत्र. १,९,३
२१९ उत्तरा.
२२० प्रश्न. १, ५
२२१ प्रश्न.
२२२ प्रश्न. २. ३
२२३ दश. ६, २०
२२४ उत्तरा. १९, ३
२२५ उत्तरा. ४, ५
२२६ प्रश्न. १, ५
२२७ उत्तरा. ९, ४८
२२८ उत्तरा. १९,२९
२२९ दश. ४, १७
२३० दशवै. ६, १९
२३१ उत्तरा. ४, २
२३२ सूत्र १, १, ४
२३३ उत्तरा. ८, १६
२३४ दशवै. ६, १७
२३५ दशवै. ६, १८
२३६ सूत्र. १, ९, ४
२३७ दश. २, ५
२३८ आचा. २, ६
२३९ आचा २, ६
२४० भगवती. १८,७
२४१ दशवै. ६, १८
२४२ उत्तरा. ३, ९
२४३.आचा.१,३,२०
२४४ आचा. १,५,५
२४५ सूत्र.
२४६ सूत्र. २ ३,११
२४७ उत्तरा ९, २६
२४८ उत्तरा. १४,२८
२४९ उत्तरा. ३,१०
२५० उत्तरा. २९,३
२५१ उत्तरा १०,१९
२५२. दश० ८,२७
२५३. उत्तारा. ३०,६
२५४. सूत्र. १,७ २७
२५५. दश० ९,४
२५६. सूत्र. २,१,१५
२५७. सूत्र० ६,२३
२५८. उत्तारा० १९, ३८
२५९. आचा. १,४,२
२६०. उत्तरा० ४,८
२६१. उत्तरा० १२, ३७
२६२. उत्तरा० ११
२६३. आचा. १,४,३
२६४. सूत्र. १, ८, २५
२६५. स्थाना० ९
२६६ भगवती. १८, १०

२६७. उत्तरा० २८, ३५
२६८. उत्तरा० १९, ९७
२६९. उत्त रा. ३०, ७८
२७०. उत्तरा० ९, २२
२७१. सूत्र. १,७,२७
२७२. उत्तरा० ४,८
२७३. भग० २,५
२७४. उत्त. २८,३५
२७५. उत. २९,२७
२७६. उत्त० ३०,८
२७७. उत्त. ३०,३०
२७८. दशवै. ९, ४
२७९. दशवै. ८,३५
२८०. उत्तरा. १८, १५
२८१. दशवै. ९,४
२८२. दशवै. ४, २७
२८३. उत्तरा. ३२, ४
२८४. उत्तारा० १२, ३७
२८५. दशवै० ५,४४
२८६. दशवै० ८,४१
२८७. सूत्र० १०,१२
२८८: सूत्र. १,८, १६
२८९. भगवती ७,७
२९०. भग० १८, ३७
२९१. उत्तारा० १९, ३७
२९२. उत्तरा० २९, १७
२९३. उत्तरा. ३१,२
२९४. उत्तरा० १९, ३९
२९५. उत्तारा० १९, ३९
२९६. अनु० १३
२९७. आचा. १,२,६
२९८. आचा. १,४,३
२९९. आचा० १,८, ८,१४
३००. आचा० १,८, ८,२१
३०१. आचा. २,१,६
३०२. सूत्र० १,२,२, १७
३०३. सूत्र. १,१०,६
३०४. भग० १,९
३०५. दश० ८,२७
३०६. दश० ८,२९
३०७. दश० ९,३,४
३०८. दश. ९,३,११
३०९: उत्तरा. १९, ९१
३१०. आचा. १,२,५
३११. आचा. २,३,१
३१२. सूत्र० २,२,३
३१३. सूत्र. २,३,१३
३१४. उत्तरा० २१, १५
३१५ अनु. १३२
३१६ प्रश्न २, ५
३१७ आचा. १,२,२
३१८ आचा. १,२,२
३१९ आचा. १,२,३

३२० आचा. १,२,५
३२१ आचा. १,३,२
३२२ आचा. १,३,४
३२३ आचा. १,४,१
३२४ आचा. २, ३, १५, १३१
३२५ आचा. २, ३, १५, १३२
३२६ आचा. २, ३, १५, १३३
३२७ आचा २, ३, १५, १३४
३२८ आचा. २, ३, १५, १३५
३२९ आचा. २, ४, १६, १४०
३३० सूत्र. १, १, ४, २
३३१ सूत्र. १,९,३२
३३२ उत्तारा. २९,४५
३३३ उत्तरा. ३२,६१
३३४ उत्तरा. ३२, १००
३३५ सूत्र. २,१,१३
३३६ उत्तरा. २९,३६
३३७ उत्तरा. ३२,४७
३३८ सूत्र. १,१५,१४
३३९ सूत्र. १,२,३,६
३४० उत्तरा. १, ११
३४१ उत्तरा. १, ११
३४२ उत्तरा. ३, १२
३४३ स्थानाग ८
३४४ उत्तरा. २९,४९
३४५ उत्तरा. २९,५१
३४६. सूत्र. १,१५, २४
३४७. उत्तारा. १९,
३४८. उत्तारा. २९, २६
३४९. दश. ४,११
३५०. दग. ४,१३
३५१. उत्तरा. ३१,२
३५५. आचा. १
३५६. आचा. १
३५७. स्थानां. ४,२
३५८. भग. १,९
३५९. भग. ७,७
३६०. दशवै. २,२
३६१. दशवै. २,३
३६२. बृहत्कल्प. २४४
३६३. बृहत्कल्प. २४७
३६४. स्थानाग,४,४
३६५ दगवै.९.३.११
३६६. उत्तरा. ४,१३
३६७ उत्तरा २६, २१
३६८. उत्तरा. ११,५
३६९. उत्तरा ६,३
३७०. सूत्र ७,२९
३७१. आचारा. ६, १८८,४
३७२. सूत्र. ८,१५
३७३. उत्तारा. ६,४
३७४. उत्तारा. २९, १९
३७५. उत्तरा. २६,१
३७६. उत्तरा २६, ३७
३७७. उत्तरा. २९, १८

३७८. वृहत ११६६
३७९. स्थाना. ४,२
३८० प्रश्न. २.२
३८१ दश ९ २,३
३८२. उत्तरा. १.४९
३८३ उत्तरा. २९, ६७
३८४. उत्तरा. २३
३८५. उत्तरा. ९,५४
३८६. दश. ८,३८
३८७. दश. ५ ३९
३८८ आचा. ४. ३ १३५
३८९. आचा. ४ ३. १३६
३९०. स्था. ४ १ २४९
३९१. स्था. ४, १, २४९
३९२. सूत्र. १.२,६
३९३. आचा. ३ ४
३९४. सूत्र. २ ६.२
३९५. सूत्र. १,१३ १५
३९६. आचा० ५,४
३९७. सूत्र ११,२५
३९८. आचा. ३,४
३९९ दश० ८,३८
४००. दश० ८.३९
४०१. सूत्र १,१३ ११
४०२. दशवै. ८ ३०
४०३. सूत्र. १,११,२
४०४. सूत्र० १,१३. १८
४०५. सूत्र० १,१३, १४
४०६ स्थान ४ २
४०७. उत्तरा० २६, ३३
४०८. दशवै० ८,३०
४०९. सूत्र. २,३,२
४१०. सूत्र. ११,३५
४११. आचा. २,३,१
४१२. सूत्र. १ २,२ ११
४१३. स्थाना. ४,२
४१४. दश० १३,८
४१५. उत्तरा २९, ६९
४१६ आचा० ३, १२६,४
४१७. दश० ८,३९
४१८. भग. ५,४,२८
४१९ दश ८ ३८
४२० ज्ञाता० १,८
४२१ उत्त० ३२ ३०
४२२. उत्तरा. १,२४
४२३. उत्तरा. ९,५४
४२४. दश० ५,५१, ३. २
४२५. दश० ८ ३८
४२६. स्था० ३,३
४२७. दश० ८,३९
४२८. आचा २,५
४२९. उत्तरा. ९,५४
४३०. उत्तरा. ९,४९
४३१. उत्तरा. ८.१३
४३२. उत्तरा. ९,४८
४३३. उत्तरा. ८,१३
४३४. उत्तरा [illegible]
४३५. उत्तरा [illegible]

४३६. आचा. २ ३, १५,२
४३७. सूत्र. १,१,१,४
४३८. सूत्र. १,४,१,८
४३९ सूत्र. १, ९, ४
४४० स्थाना. ४, २
४४१ प्रश्न २, २
४४२ उत्तरा. २९,७०
४४३ दश. ९, २
४४४ दश. ९, ७
४४५ दश. ९, २, ४
४४६ दश. ९, २, १
४४७ दश. ९, २, २
४४८ दश. ९, १, १२
४४९ उत्तरा १, ४१
४५० प्रश्न. २, ३
४५१ उत्तरा. २९,४३
४५२ स्थाना. ८
४५३ उत्तरा. ११,१३
४५४ उत्तरा. १, ७
४५५ ज्ञाता. २ ५
४५६ राज. ४, ७६
४५७ दशवै. ८, ४०
४५८ दश.
४५९ दश.
४६० दश.
४६१ उत्तरा. १, २
४६२ उत्तरा १, ९
४६३ उत्तरा. १, २८
४६४ उत्तरा.
४६५ उत्तरा.
४६६ उत्तरा.
४६७ उत्तरा. १, ६
४६८ उत्तरा. २५,२०
४६९ उत्तरा. २५ २१
४७० उत्तरा. २५,२२
४७१ उत्तरा. २५,२३
४७२ उत्तरा. २५,२४
४७३ उत्तरा. २५,२५
४७४ उत्तरा. २५,२६
४७५ उत्तरा. २५,२७
४७६ उत्तारा. २५,३१
४७७ उत्तारा. २५,२२
४७८ उत्तरा. २५,२७
४७९ उत्तरा २५,३०
४८० दश. ८, २८
४८१ दश. ६, २३
४८२ दश. ४
४८३ उत्तरा. ३, २
४८४ दशवै. ६, २४
४८५ उत्तरा १९,३०
४८६ सूत्र १,२,३ ३
४८७ दश. ६, २६
४८८ उत्तारा. १, ४
४८९ उत्तरा. १, ५
४९० उत्तारा. १, ६
४९१ उत्तरा. ५, २१
४९२ उत्तारा. ५, २२
४९३ उत्तारा ५, २४
४९४ उत्तारा. २०,४८
४९५ उत्तारा. ६, १०
४९६ उत्तारा ६, ११
४९७ राजप्रश्नीय. ४, ८२
४९८ स्थानाग. ४ ३
४९९ उत्तारा. १, ४२
५०० उत्ताराध्ययन. २९, ३
५०१ स्थानाङ्ग ८
५०२ स्थानाङ्ग. ८
५०३ भगवती. ७, १
५०४ दश. ९, १७

५०५ भग २ ५
५०६ दश. ८, ५३
५०७ सूत्र. १,१२,१५
५०८ उत्तरा. ३२,४२
५०९ दश. ९ ३, ५
५१० उत्तरा १८ ३३
५११ उत्तरा. १३,१०
५१२ दश. १,२०,३
५१३ सूत्र १२, २२
५१४ उत्तरा.१८ ३०
५१५ दश. ८, ४१
५१६ आचा २,९६,५
५१७ उत्तरा २, १७
५१८ सूत्र ५,२५ २
५१९ सूत्र. ११, ३२
५२० सूत्र. २,१३,३
५२१ उत्तरा.१८,४३
५२२ सूत्र. १४, २६
५२३ ठाणा. १ ला. ठा. १
५२४ उत्तरा,१४ १९
५२५ आचा. ५,१७१ १७२, उ. ६
५२६ आचा. ५,१३६

५२७ उत्तरा. १९,६३
५२८ उत्तरा.१९ ५८
५२९ सूत्र २, १, ९
५३० ज्ञाता. १, ९
५३१ भग. ७ ८
५३२ भग. ७. १
५३३ उत्तरा.
५३४ उत्तरा.
५३५ उत्तरा.
५३५ उत्तरा.
५३६ सूत्र.
५३७ सूत्र.
५३८ आचा.
५३९ आचा.
५४० आचा.
५४१ आचा.
५४२ उत्तरा.
५४३ उत्तरा.
५४४ उत्तरा.२०,३७
५४५ उत्तरा. ९,३५
५४६ उत्तरा. ९, ३५
५४७ उत्तरा ९, ३६
५४८ आचा १ ५७, ५६ ७

५४९ उत्तरा. ९, ३४
५५० उत्तरा.१९,५५
५५१ आचा. ८,२१६
५५२ उत्तरा.१०,२१
५५३ उत्तरा.१०,२७
५५४ उत्तरा १०,१
५५५ उत्तरा. १०, २
५५६ आचा ५.१४३ १
५५७ सूत्र. २, १०,३
५५८ सूत्र. २, ८, ३
५५९ सूत्र. २, ६, १
५६० सूत्र. २,२२.२
५६१. उत्तरा. १४, २३
५६२ उत्तरा. ६ ३
५६३ सूत्र १०, १२
५६४. सूत्र. १३,१८
५६५. उत्तरा. २९,१
५६६. उत्तरा. २५, ४३
५६७. उत्तरा.
. उत्तरा.
५६९. आचा.

५७० उत्तारा.
५७१. उत्तरा.
५७२. उत्तारा
५७३ सूत्र
५७४. आचा.
५७५. अनुयोग
५७६. उत्तारा.
५७७ आचा
५७८. दशवै. १०,११
५७९. दशवै. १०, ५
५८०. दशवै. १०, १
५८१. उत्तरा. १५.२
५८२ उत्तारा १५.
१२
५८३. दशवै.१०,१९
५८४ दशवै.१०,१६
५८५. सूत्र. १४, २१
५८६. दशवै. ३, ११
५८७ उत्तारा. १६,
१५
५८८. सूत्र. १३, १३
५८९. सूत्र. १०, १९
५९०. सूत्र. १४, ६
५९१. दशवै. १०,१७

५९२. उत्तारा १९,२५
५९३. सूत्र. २, २, २
५९४. सूत्र. ९, ६
५९५. सूत्र. ७, २८
५९६. उत्तारा. ३५,
१५
५९७. आचा.२,१००
६
५९८. प्रश्न. २, ५
५९९. दश. १ ३
६००. दश ६, २२
६०१. उत्तारा. १७,३
६०२. उत्तारा. १७,
११
६०३. अनु.
६०४. अनु.
६०५. अनु.
६०६. दश. ७, ४९
६०७. सूत्र. २,२,३९
६०८. स्थानांग ४,२
६०९. प्रश्न.
६१०. आचा. १,२,३
६११. आचा. १.२,३
६१२. आचा. १.२,६

६१३. आचा. १,३,१
६१४. आचा. १,३,२
६१५. आचा. १ ३,३
६१६. सूत्र, १,२,१५
६१७. सूत्र. १,१२,८
६१८. सूत्र. १, १२,
११
६१९. सूत्र. १,१२,
१५
६२०. स्थाना. ४,३
६२१. भग. ११
६२२. दश. ४,१०
६२३. उत्तारा० १९,
५९
६२४. उत्तरा० २८,
३५
६२५. उत्तारा० २८,
३५
६२६. उत्तारा० २८,
३५
६२७. ठाणा. २,३,४,
११
६२८. ठा० १,४२
६२९. दश० १,५

६३०. उत्त० २,१३
६३१. उत्तरा. ११, २०
६३२. उत्तरा० ११, २३
६३३. उत्त० ११,३२
६३४. दश० ४,२२
६३५. उत्त० २८,३०
६३६. उत्त. २५.३२
६३७ सूत्र० १२.१६
६३८ ठाणा० २.१, २४
६३९. उत्त. २९,५९
६४०. ठाणा० ४,४, ३१
६४१. आचा०
६४२, उत्तरा०
६४३. उत्तरा०
६४४. उत्तरा.२८,१५
६४५. उत्तरा.२८,३५
६४६. आचा० ६, १८७, ४
६४७. सूत्र० ८, २३
६४८. उत्त० २९,६०
६४९. दश० १०, ७
६५०. सूत्र० १४,२५
६५१ उत्त० २९, ९
६५२. ठाणा० २, १, २३
६५३. उत्त० २८,३५
६५४. उत्त० २८,३०
६५५. उत्त० २९,६१
६५६. ठाणा० १ ४४
६५७. सूत्र० १२ ११
६५८. सूत्र. २,१७,२
६५९. आचा० १
६६०. आचा० १
६६१. आचा० १
६६२. आचा० १
६६३. सूत्र० २
६६४. सूत्र० २
६६५. सूत्र० २
६६६. सूत्र० २
६६७. सूत्र० २
६६८. सूत्र० २
६६९. स्थाना० ३
६७०. स्थाना० ३
६७१. दश० २
६७२. दश० ४
६७३. दश० ४
६७४ दश० ४
६७५. दश० ५
६७६. दश० ४
६७७. दश० ४
६७८. दश० ४
६७९. उत्त० ४
६८०. उत्त० ८
६८१ उत्त० २९
६८२. दश० ७, ५
६८३ सूत्र० १४,२५
६८४. उत्त० २१,१४
६८५. सूत्र० ८, २५
६८६. उत्त० १, २५
६८७ सूत्र० ९, २६
६८८. सूत्र० ९, २५
६८९. सूत्र० ९, २५
६९०, दश० ८, ४७
६९१. सूत्र० ९, २५
६९२. ठाणा० ७,७८
६९३. ठाणा. ४,१,४
६९४. दश० ८, १९
६९५. उत्तरा० ४

६९६ सूत्र० २.४
६९७. सूत्र० २,१८
६९८. उत्त० ३३,३५
६९९ उत्तर. ४,३
७००. उत्तर. ३२,७
७०१. उत्ता० ३२,५९
७०२. उत्त० २५,३०
७०३ उत्त० ३२,७
७०४. उत्ता० १०,४
७०५. सूत्र० २४,१
७०६ उत्ता० ३२, ७
७०७. उत्ता० १०,१५
७०८. उत्त० ३,३
७०९. आचा० ३, ११,१
७१०. उत्ता० १३,१९
७११. उत्ता० २१,९
७१२ उत्त० १३,२३
७१३. उत्त० १८,१७
७१४ सूत्र. ५,३६,१
७१५. सूत्र. ५ ३६,२
७१६. सूत्र० ९,४
७१७. सूत्र० ५,१,२
७१८. सूत्र० ७,११

७१९. आचा० ६, १८१,२
७२०. उत्तरा० २१, १८
७२१. उत्त०
७२२. दश० ३,११
७२३. आचा० ३, ११७,३
७२४. सूत्र० १५,५
७२५. आचा० ३, १२५,४
७२६. दश० २,११
७२७. उत्त० ७,६
७२८. सूत्र० ८,१३
७२९ उत्त० २१,२०
७३०. आचा० २, १००,६
७३१. उत्त० १९,१३
७३२. उत्त० १९,१३
७३३. दश० ८,४५
७३४. आचा. १,४३, ५
७३५. सूत्र० १, १०, ३

७३६. उत्तरा. २१, १५
७३७. उत्त० २८,११
७३८. उत्त० २८,१४
७३९ प्रश्न० १,२
७४०. भग० ५,८
७४१. सूत्र. १,१,१, १६
७४२ भग० १,१०
७४३. सूत्र. १,१,३, १०
७४४. उत्त० १०,३५
७४५. सूत्र. १४,१७
७४६. उत्त० १८,५४
७४७. दश० ४,२५
७४८. उत्त० ३२,२
७४९ उत्त. ३२,३३
७५०. उत्त. २८,३०
७५१. उत्तरा. २८, ३७
७५२. सूत्र. २
७५३. आचा. २
७५४. आचा. २
७५५. आचा. ,२

७५६. दशवै.
७५७. उत्तरा.
७५८. उत्तरा.
७५९. उत्तरा.
७६० दश.
७६१. दश.
७६२. दश.
७६३ आचा. ३, ७, २
७६४. दश. १, २
७६५. दश. १, ३
७६६ दश. ५, २, ६
७६७. दश ५,२,२५
७६८. दश. ५, १, ८
७६९. दश. ९, ३, ४
७७०. दश. ५,१ ९७
७७१. सूत्र. १,७ २९
७७२. उत्तरा ६ १६
७७३. उत्तरा ३५, १७
७७४. सूत्र. १५, ४
७७५ उत्तरा. १,३२
७७६. दश. ४, ११
७७७. उत्तरा. ४,१३
७७८. सूत्र. १५, २१
७७९. दश. ५, ४, २,
७८०. आचा. ४, १२८ १
७८१ सूत्र. २, ७, ३
७८२. सूत्र. १०, ७
७८३. आचा ३,८,२
७८४. सूत्र. १५, २४
७८५. आचा. ५, १६३ ५
७८६. उत्तरा. १३, २६
७८७. उत्तरा. ४, १
७८८ उत्तरा. १,४०
७८९ दश. ५, १४
७९०. दश. ५, २७
७९१. सूत्र. ११, ११
७९२. उत्तरा. १३, ३२
७९३ उत्तरा. ८.११
७९४. दश. ८, ४१
७९५. दश ५, १४
७९६. सूत्र. ९, ३६
७९७. सूत्र. २ ११,१
७९८. उत्तरा. २१, २१
७९९. दश. ५, १५
८००. आचा. २, ७१ १
८०१. आचा. ४, १२८ १
८०२ आचा. ८, १८ ८
८०३ आचा. १, २२ ३
८०४. आचा. ३, १०८ १
८०५. सूत्र. १, २७, २
८०६. नदी. ८
८०७ सूत्र. १, ३, २ ११
८०८. सूत्र. १, ३, २ १२
८०९. सूत्र. १, ३, २ १३
८१०. उत्तरा. ८, २
८११. उत्तरा. १०, २८

८१२. उत्तरा. ८, २
८१३ उत्तारा २४,
४३
८१४. आचा.
८१५ आचा.
८१६ आचा
८१७. आचा.
८१८. आचा.
८१९, सूत्र०
८२०. सूत्र०
८२१. सूत्र०
८२२. सूत्र०
८२३ दश०
८२४. दश०
८२५. उत्त०
८२६. उत्त०
८२७. आचा०
८२८. आचा०
८२९. आचा०
८३०. आचा०
८३१. आ०
८३२. आ०
८३३. सूत्र०
८३४. सूत्र०

८३५ भग०
८३६. दश०
८३७. उत्त०
८३८. उत्तरा०
८३९. आ०
८४० उत्त०
८४१. उत्त० ४, ५
८४२. उत्त० ४, ५
८४३. सूत्र० १४, १
८४४. उत्त० १०,१५
८४५ आ० ३,११७,
३
८४६. उत्त० ४. १०
८४७ सूत्र० १४, ९
८४८ आ०
८४९ आ०
८५०. स्था०
८५१ दश०
८५२. दश०
८५३. दश०
८५४. उत्त०
८५५. आ०
८५६. आ०
८५७. उत्त०

८५८. उत्त०
८५९. उत्त०
८६०. उत्त०
८६१. स्था०
८६२. उत्त०
८६३ उत्त०
८६४. ठाणा० २,४,
१३
८६५. सूत्र० १०,२१
८६६. दश० २, ५
८६७ उत्तरा० २३,
४३
८६८. सूत्र०
८६९ स्था०
८७०. उत्त०
८७१. सूत्र. १०,२१
८७२. दश० ४,९
८७३. आ० २,९७,६
८७४. सूत्र० ८,१६
८७५. स्थाना ३,३,
५२
८७६ उत्तरा० ३,१
८७७. उत्तरा०
८७८. उत्तरा. १०,४

८७९. उत्त० ३,७
८८०. उत्त० ६,१४
८८१. सूत्र.
८८२. प्रश्न.
८८३. प्रश्न.
८८४. प्रश्न.
८८५. प्रश्न.
८८६. प्रश्न.
८८७. प्रश्न.
८८८. प्रश्न.
८८९. उत्ता. १४, २४
८९० उत्त. १८,२५
८९१. दश. ५, २३
८९२ सूत्र. ५, ६, २
८९३. सूत्र. ५,१६,१
८९४. दश ८, ५
८९५. सूत्र. २,१,२
८९६ सूत्र. २,२,२
८९७. उत्ता. ४, २
८९८. दश ८, ४२
८९९ सूत्र. ३,१३,४
९००. आचा. ९.६६
२
९०१. आ. ६,१७४,१

९०२. दश. ६, १६
९०३. सूत्र. ३, ९, ४
९०४. सूत्र. २ ८,३
९०५. सूत्र. ४, १२,
१
९०६. सूत्र २,२,३
९०७. उत्ता ३२,१८१
९०८. उत्ता १६,१३
९०९. उत्ता ३२,१९
९१०. उत्ता. १६,१४
९११. उत्ता. १४,४९
९१२. आ. ६, १७५,
१
९१३. उत्ता. १३,२७
९१४. उत्ता, १४ ४७
९१५. उत्ता. १४,१३
९१६. उत्ता. ९ ५३
९१७ आ २.९३.५
९१८. उत्ता ८, १४
९१९. सूत्र. १३, २१
९२०. दश. २,५
९२१. दश. ६, १७
९२२. उत्त.
९२३. सूत्र. १०, ५

९२४. उत्ता. ७, ३०
९२५. सूत्र. १५, ६
९२६ सूत्र. १२, १५
९२७. उत्ता. ९, ४४
९२८ दश. ५, ३९
९२९. सूत्र १, १६
९३०. आ. ५ १६४,
९३१ सूत्र. १२, १५
९३२ सूत्र. १०, १८
९३३. सूत्र. १३, १४
९३४. सूत्र ११.४
९३५. सूत्र २१ २
९३६. सूत्र. २ २१,२
९३७. सूत्र० ३,४,२
९३८. सूत्र० १४, १
९३९. सूत्र० २.११,१
९४०. उत्ता० १, ९
९४१. उत्ता० २९ ४९
९४२. उत्ता० २९.१७
९४३. उत्ता० २१,१५
९४४. सूत्र. २,१३,३
९४५. सूत्र० २ ३,२
९४६. उत्ता. ११,११
९४७. दश० ९ ३,२

९४८. दश. ९,१,७
९४९. उत्त ९, १०
९५०. उत्त. २२ ४८
९५१. उत्त. ३२,१२
९५२ उत्त. २१,१४
९५३. उत्त. १३,२२
९५४. उत्त. १३,२१
९५५. उत्त. १४,२७
९५६. औप. ३४
९५७. सूत्र २, २
९५८. स्थाना ४
९५९. दश ४, २८
९६० उत्त. १८, १७
९६१. सूत्र. १ २,३, १३
९६२. आचा. २
९६३. आचा. २
९६४. सूत्र. २
९६५. उत्त. १०
९६६. उत्त. ११
९६७. उत्त. १२
९६८. उत्त. १०, ८
९६९. उत्त. ३. ८
९७०. उत्त. १०,१९
९७१. उत्त. ३, ९
९७२. सूत्र. २,१९,३
९७३. सूत्र २, १, १
९७४. उत्त. १०,२०
९७५. सूत्र. १५,१८
९७६. उत्त. १०,१६
९७७. सूत्र १५,१७
९७८. उत्त. १०,१७
९७९. सूत्र २,११
९८०. आ. ५,१५५, ३
९८१ सूत्र. १५,१८
९८२. उत्त. ८, १५
९८३. उत्त. १७, १
९८४. उत्त. २०,११
९८५ उत्त. ३४,३
९८६. उत्त. ३४,६०
९८७. उत्त. ३४,६१
९८८. सूत्र. १०,१५
९८९. सूत्र.
९९० सूत्र.
९९१ उत्त.
९९२. आचा.
९९३. उत्तरा.
९९४. उत्त.
९९५. उत्त.
९९६ उत्त.
९९७. उत्त. १९ १
९९८. उत्त. १९,१
९९९. उत्त. २९
१०००. उत्त. २९
१००१. उत्त. २९
१००२. उत्त. २९
१००३ उत्त २९
१००४. उत्त. २९
१००५, सूत्र १,१४, १३
१००६ आचा. १,२. १
१००७ दश १,१७
१००८. आचा. ६,२, ५